ISSN-0971-8397

योजना

अक्तूबर 2013 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 10

विकास, रोज़गार और गरीबी

गरीबी का आकलन
टी.सी.ए. अनंत

आर्थिक वृद्धि, रोज़गार सृजन और गरीबी उपशमन
रिजवानुल इस्लाम

रुपये का अवमूल्यन : कारण, परिणाम और आगे की राह
हरकीरत सिंह

भारत में रोज़गार और आर्थिक वृद्धि
एस महेंद्र देव

विशेष आलेख
छोटे राज्यों की मांग और खतरे
गुलजीत के अरोड़ा

विकास यात्रा

एनयूएलएम : शहरी गरीबों के लिए जीविका के अवसर

आर्थिक मामलों की मंत्रिमंडलीय समिति ने शहरी ग़रीबों के लिए रोज़गारोन्मुख कौशल प्रशिक्षण से संबंधित मुख्य योजना को मंजूरी प्रदान की।

6405 करोड़ रुपए के आवंटन के साथ राष्ट्रीय शहरी जीविका मिशन का लक्ष्य स्वरोज़गार एवं कुशल पारिश्रामिक रोज़गार अवसर के माधयम से शहरी ग़रीबों की ग़रीबी घटाना है।

शहरी ग़रीबों को अपनी सेवाएं देने के लिए तथा स्वरोज़गार, कौशल प्रशिक्षण एवं अन्य लाभों के बारे में सूचनाएं हासिल करने के लिए शहर जीविका केंद्र स्थापित किए जाएंगे। स्वरोज़गार कार्यक्रम के तहत शहरी ग़रीबों से जुड़े व्यक्तियों एवं समूहों को लाभकारी स्वयं रोज़गार उपक्रम लगाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। इसे दो चरणों–प्रथम चरण 2013-17 और द्वितीय चरण 2017-2022 में लागू किया जाएगा और इसके अंतर्गत एक लाख या उससे अधिक की आबादी (2011 की जनगणना के मुताबिक) वाले सभी शहर एवं एक लाख से कम जनसंख्या वाले जिला मुख्यालय भी आएंगे।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम–निर्धनों के लाभ के लिए

सरकार ने हाल ही में भूमि अधिग्रहण उचित मुआवजा, पुनर्वास एवं पारदर्शिता अधिकार विधेयक पारित किया है जो भूमि अधिग्रहण के पुराने कानून के स्थान पर बनाया गया है। यह अधिग्रहण से प्रभावित लोगों को मुआवजा, पुनर्वास, पुनर्रिहायश लाभों की गारंटी प्रदान करता है।

मुआवजा उपबंध

1. भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1984 का स्थान लेने वाले इस विधेयक में ज़मीन के बाज़ार मूल्य से चार गुणा तक मुआवजे का प्रस्ताव है। यह राज्यों को, यदि वे चाहें तो उस पैकेज को बढ़ाने के लिए अधिकृत करता है।
2. इस बात का प्रावधान है कि जो सटोरिये कम दाम पर ज़मीन खरीदते हैं वे अनुचित लाभ न ले पाएं।
3. निश्चित समयावधि से अधिक दिनों से बंटाई कर रहे लोगों को भी मुआवजा मिलेगा।

सहमति

इसमें सार्वजनिक निजी साझेदारी परियोजनाओं के लिए अधिग्रहण की स्थिति में 70 फीसदी भूमालिकों और निजी परियोजनाओं के लिए 80 फीसदी भूमालिकों की पूर्व सहमति प्राप्त कर लेना अनिवार्य किया गया है।

उपबंध ऐसी परियोजनाओं के लिए पूर्व तिथि से लागू होंगे जहां नये कानून के अस्तित्व में आने तक अधिग्रहण प्रक्रिया पूरी नहीं हुई है।

विधेयक के अनुसार यदि ज़मीन पांच साल तक इस्तेमाल में नहीं आती है तो उसे राज्य भू बैंक को लौटा दिया जाएगा।

योजना

वर्ष : 58 • अंक : 10 • अक्तूबर 2013 • आश्विन-कार्तिक, शक संवत 1935 • कुल पृष्ठ : 64

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा

वरिष्ठ संपादक
रेमी कुमारी

संपादक
ऋतेश पाठक

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
वी.के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा

दूरभाष : 26100207
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण : **जी. पी. धोपे**

इस अंक में

संपादकीय	–	5
गरीबी का आकलन	टी.सी.ए. अनंत	7
रोज़गार और आर्थिक वृद्धि : नीतियां और रुझान	एस. महेंद्र देव	11
आर्थिक वृद्धि और न्यायपूर्ण जन-समावेशन	कमल नयन काबरा	15
आर्थिक वृद्धि, रोज़गार सृजन और ग़रीबी उपशमन	रिजवानुल इस्लाम	19
जनसांख्यिकीय लाभांश या जनसांख्यिकीय अभिशाप	अरविंद कुमार सेन	23
विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार की प्रवृत्तियां	बिस्वनाथ गोलदार	26
आर्थिक संवृद्धि, रोज़गार और दरिद्रता निवारण	गिरीश मिश्र	29
आर्थिक वृद्धि – भारतीय पथ	सोना मित्रा	31
विकास, रोज़गार एवं गरीबी	जोमो क्वामे सुंदरम अनीस चौधरी	33 33
गरीबी उन्मूलन और पशुपालन	रवि शंकर	37
छोटे राज्यों की मांग और खतरे	गुलजीत के. अरोड़ा	43
खेलों से भी बदल रहा है देश	संजय श्रीवास्तव	47
आयात के भरोसे इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग	शिवानंद द्विवेदी सहर	50
रुपये का अवमूल्यन : कारण, परिणाम और आगे की राह	हरकीरत सिंह	53
शिक्षा परिदृश्य में गुणवत्ता क्रांति की आवश्यकता	आनंद कुमार	56
गांधी होने का अर्थ	भारत यायावर	58
क्या आप जानते हैं?	–	60

योजना **हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड IV, तल VII, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष** : 26100207, 26105590 तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पालडी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : ₹ 100 **द्विवार्षिक** : ₹ 180; **त्रैवार्षिक** : ₹ 250; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** ₹ 530; **यूरोपीय एवं अन्य देश** : ₹ 730।

योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए *योजना* उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

समावेशी लोकतंत्र से ही भारत का समावेशी विकास संभव

मैं *योजना* का 2009 से नियमित पाठक हूं। *योजना* विद्यार्थियों, शोधार्थियों, अध्यापकों एवं सामान्य पाठकों सभी के लिये महत्वपूर्ण तथा ज्ञानवर्धक पत्रिका है। पत्रिका जिस विषय पर केंद्रित होता है, उसकी संपूर्ण जानकारी सरल एवं रोचक भाषा में उपलब्ध कराती है। *योजना* में प्रकाशित होने वाले नियमित स्तंभ 'क्या आप जानते है?', 'जहां चाह वहां राह', अनुकरणीय पहल, शोधयात्रा, पुस्तक चर्चा, राजनय एवं झरोखा जम्मू-कश्मीर का पत्रिका में चार चांद लगाते हैं। विशेषत: 'झरोखा जम्मू-कश्मीर का' तो पत्रिका का सर्वाधिक सकारात्मक भाग है। यह देश को जम्मू-कश्मीर के बारे में सकारात्मक सूचना देकर एकता के सूत्र में पिरोता है और जम्मू-कश्मीर की महत्ता एवं प्रासंगिकता से पाठकों को अवगत कराता है।

योजना का अगस्त 2013 विशेषांक पढ़ा, जो कि समावेशी लोकतत्र पर केंद्रित है। अंक में प्रकाशित सभी विद्वानों के लेख सारगर्भित और प्रासंगिक लगे। संपादकीय 'कतार में आखिरी व्यक्ति का हक़' तो हम सभी भारतीयों को झकझोर देता है और हमें समावेशन की प्रक्रिया के द्वारा सभी के कल्याण को प्रेरित करता है। पंचायती राज मामलों के पूर्व केंद्रीय मंत्री मणिशंकर अय्यर का आलेख पंचायती राज की मूल धारणा को स्पष्ट करता है। श्री अय्यर ने पंचायती राज की स्थापना हेतु विस्तार से संपूर्ण प्रक्रिया का विवेचन किया है। वास्तविक तथा समावेशी लोकतंत्र की प्रक्रिया तभी पूरी हो सकती है, जब पंचायती राज संस्थाओं का ठीक प्रकार से संचालन होगा। अरुणा राय एवं रक्षिता स्वामी का लेख समानता और लोकतांत्रिक संस्थान के मध्य पारस्परिक संबंधों पर हमारी दृष्टि स्पष्ट होती है। राजीव भार्गव का आलेख 'धर्मनिरपेक्षता और समावेशी समाज' धर्म और समाज के मध्य एक दृष्टिकोण पेश करता है।

विशेष आलेख में प्राणेश प्रकाश का लेख 'कॉपीराइट: कितना सही कितना गलत' हमें अनेक नवीन जानकारियों से अवगत कराता है। इस आलेख में सबसे नवीन जानकारी यह है कि 2012 में हुए नियमों में बदलाव के बाद गूगल और याहू जैसे सर्च इंजन से विषयवस्तु का इस्तेमाल भी कॉपीराइट कानून के दायरे में आ गया है। इसके अतिरिक्त पत्रिका में शामिल श्रीनिवास राघवेंद्र, अरविंद मोहन, सुदर्शन अयंगार, रहीस सिंह, सुधा पई, अजीत कुमार गांधी, नामदेव, उमेश चतुर्वेदी, राजकुमार, मधुश्री दासगुप्ता चटर्जी, वैभव सिंह, अरविंद कुमार सिंह, अजय कुमार सिंह, सुभाष सेतिया एवं सुरेश अवस्थी के लेख भी प्रेरक, प्रशंसनीय एवं संग्रहणीय है।

इस अभिनव प्रयास हेतु *योजना* की पूरी टीम को कोटिश: धन्यवाद।

त्रिभुवन मिश्रा
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
ई-मेल: mishratribhuvan1990@gmail.com

सुधार की दरकार

योजना का अगस्त 2013 का समावेशी लोकतंत्र पर विशेषांक काफी संतुलित है। लोकतंत्र विषय के विशेषज्ञों द्वारा लिखे गए सभी लेख एवं विभिन्न पक्षों का एक स्थान पर संग्रह बेहतरीन है।

पंचायती राज मंत्री रह चुके मणिशंकर अय्यर ने विकास में पंचायती राज की भूमिका, अरुणा राय और रक्षिता स्वामी ने सामाजिक पहलू, श्रीनिवास राघवेंद्र ने वैश्वीकरण का लोकतंत्र पर प्रभाव, राजीव भार्गव ने धर्मनिरपेक्षता व समाज पर इसके प्रभाव, समावेशी पक्ष पर संसदीय मामलों के जानकार अरविंद मोहन ने पंचायती राज पर बाज़ारवाद का प्रभाव, सुदर्शन अयंगार ने लोकतंत्र से गांधी और उनके सपने, वंचित और हाशिये के समुदायों का वर्तमान समय में लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्थिति आदि को लेखकों ने अपने अनुभवों व अध्ययन से काफी जीवंत बनाया है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में चंद कमियों व भ्रष्टाचार के बावजूद यह देश में विकास से जुड़े ग़रीबी, बेरोज़गारी, पर्यावरण

असंतुलन, स्वास्थ्य-शिक्षा आदि की समस्या से लड़ने में महत्वपूर्ण योगदान के साथ महिला, दलित व अन्य हाशिये के समुदायों की भागीदारी द्वारा सशक्तीकरण के दिशा में अभूतपूर्व योगदान कर रहा है। हम कह सकते हैं कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में सुधार कर एवं इसे मजूबती प्रदान कर ही हमारा कल बेहतर होगा।

विनीत कुमार
वर्धा,
ई-मेल : vinit816@gmail-Com

टूट गया दिलों को जोड़ने वाला तार

अगस्त 2013 की *योजना* पत्रिका पढ़ी। 'समावेशी लोकतंत्र' पर केंद्रित यह अंक काफी अच्छा लगा। इसी अंक में टेलीग्राफ सेवा से संबंधित लेख 'संचार क्रांति के संवाहक' की विदाई तो बेहद पसंद आया क्योंकि टेलीग्राम सेवा की शुरुआत से लेकर अंतिम दौर तक का सारांश इस लेख में दिया गया है।

तार सेवा का अपना एक लंबा स्वर्णिम इतिहास रहा है। 163 साल पुरानी तार सेवा को घाटे के चलते बंद कर दिया गया। परंतु आज भी कई ऐसे काम पड़ते हैं, जिनमें तार सेवा की काफी ज़रूरत पड़ती है। तार सेवा बंद किए जाने की ख़बर सुनकर मुझे भी काफी दुख हुआ क्योंकि तार घर से मेरे परिवार का करीबी नाता रहा है। मेरे पिताजी, दादाजी व चाचाजी तीनों तारघर में ही कार्यरत थे। तार सेवा की पूरी प्रक्रिया के बारे में मैं बचपन से ही अच्छी तरह वाकिफ़ था। सरकार को तार सेवा पूरी तरह से बंद नहीं करनी चाहिए थी, बड़े शहरों में एक तारघर अवश्य चलाते रहना चाहिए था। जिन लोगों ने तार सेवा का वो पुराना दौर देखा है, वे ही जानते हैं कि तार सेवा पहले कितनी महत्वपूर्ण हुआ करती थी। इंटरनेट के इस दौर में तार सेवा आज पूरी तरह से खो चुकी है। परंतु तार सेवा के योगदान को सैकड़ों वर्षों तक याद किया जाएगा।

14 जुलाई देर रात तक तारघरों में तार करने वालों की काफी भीड़ रही, क्योंकि लोग अंतिम दिन किए गए तार को सहेज कर रखना चाहते थे। अख़बारों ने भी तार सेवा बंद होने की ख़बर प्रमुखता से छापा और 'टूट गया दिलों को जोड़ने वाला तार' जैसी हेडिंग छपी थी। तार-सेवा बंद करने के विरोध में कुछ अधिवक्ताओं ने तो कोर्ट में याचिका तक डाल दी है। परंतु घाटा उठाकर सरकार किसी भी सेवा को चलाना क्यों चाहेगी? तार सेवा के विषय में संपूर्ण जानकारी से भरपूर लेख छापने पर मैं *योजना* संपादकीय टीम को धन्यवाद देता हूं। इस अंक में 'संपूर्ण पंचायती राज की ओर', समानता और लोकतांत्रिक संस्थान', 'कॉपीराइट कितना सही कितना गलत', 'विषमता में समावेशी लोकतंत्र कैसे संभव', 'युवा भारत का समावेशी लोकतंत्र', 'समावेशी लोकतंत्र: आदर्श और यथार्थ', 'लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियां एवं संभावनाएं', 'भारतीय लोकतंत्र में ग्रामीण महिला सहभागिता', 'ग्रामीण भारत में जागृति की ज्योति जलाती महिलाएं' आदि लेख काफी अच्छे और जानकारियों से भरपूर हैं।

महेंद्र प्रताप सिंह
मेहरागांव, अल्मोड़ा, उत्ताराखंड

गंभीरता बनाए रखी है

अख़बार हो या पत्रिका उसमें संपादकीय पृष्ठ का गंभीर मतलब होता है। निश्चित ही *योजना*, अपनी गंभीरता और उपयोगिता को बनाए रखे हुए हैं, यह महत्वपूर्ण बात है। मैं नियमित पाठक हूं, इसलिए यह कह सकता हूं कि योजना का पत्रिका ने अनवरत अपनी इस प्रासांगिकता को बनाए रखा है यह छोटी बात नहीं है। विजयपुरा (राजसमंद, राजस्थान) गांव की सरपंच रुक्मिणी देवी से लेकर झारखंड के गिरिडीह जिले की सामाजिक कार्यकर्ता तक पहुंचकर किरण वर्मा की चर्चा को स्थान दिया जाना बहुत ही सराहनीय और प्रेरणादायक है। इस लेख के लिए मैं सुभाष सेतिया जी को धन्यवाद कहता हूं।

योजना द्वारा बौद्धिक विकास को बढ़ावा मिलता है और भारत में हो रहे समग्र विकास की सूचनाएं एवं विकास के स्वरूप की जानकारी मिलती रहती है। मैं इसके लगभग सभी अंकों न का सिर्फ़ संग्रह करता हूं वरन उन्हें महीने के आखिर तक सहेज कर रखता भी हूं। कुछ विशेष अंक संदर्भ के लिए भी रखता हूं। यह पत्रिका सूचनाओं का भंडार न होकर अद्यतन मुद्दों पर तथ्यपरक जानकारी का भंडार है।

दीपेंद्र बहादुर सिंह
शिवकुटी, तेलियरगंज, इलाहाबाद, उ.प्र.

ये कैसा लोकतंत्र

योजना का अगस्त 2013 अंक पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह पत्रिका पाठकों को अच्छी भी लगती है और ज्ञानवर्धक भी है लेकिन जहां तक प्रश्न लोकतंत्र का है तो अंदर से आत्मा रोने लगती है कि हम किस लोकतंत्र में जी रहे हैं, क्या यही वह लोकतंत्र भारत है जिसके लिए भारत मां के वीर-वीरांगनाओं ने अपने प्राणों की आहुति देकर अंग्रेज़ों की जंजीरों में जकड़ी हुई भारत मां को आज़ाद कराया था। यदि आज भारत मां के वीर सपूत शहीद भगत सिंह, चंद्रशेखर, शहीद अशफ़ाक उल्ला खां, राम प्रसाद विस्मिल, रानी लक्ष्मी बाई, वीरांगना झलकारी बाई आदि के त्याग को क्या भारत का राजनेता भूल गए हैं या फिर सो गए हैं।

खुशाल सिंह कोली
फतेहपुर सीकरी, आगरा, उ.प्र.

आज़ादी की तस्वीर

आज़ादी की 66वीं वर्षगांठ पर आपका समावेशी लोकतंत्र शीर्षक पर विशेषांक संग्रहणीय है। आज़ाद भारत की उथली तस्वीर को रेखांकित करती लेखमाला से बहुत कुछ नवीन जानकारियां मिलीं जो सराहनीय प्रस्तुति कही जा सकती है। आपसे एक अनुरोध करना चाहूंगा कि आप इसमें एक स्तंभ 'ग्रामीण क्षेत्रों की खोज' पर आधारित स्तंभ का प्रकाशन किया करें। इससे ग्रामीणों को नयी प्रेरणा मिलेगा और अधिकांश ग्रामीण लाभान्वित होंगे।

छैल बिहारी शर्मा 'इन्द्र'
छाता, उ.प्र.

लोकतंत्र में हर व्यक्ति की सहभागिता

योजना का समावेशी लोकतंत्र पर केंद्रित अगस्त 13 का अंक पढ़ा। समावेशी लोकतंत्र के संदर्भ में बेहतर जानकारी मिली। संपादकीय हमेशा की तरह उत्साह भरनेवाला रहा। भारत के संदर्भ में देखे तो यह समावेशी लोकतंत्र के मार्ग पर अग्रसर तो हैं, मगर इसकी राह में चुनौतियां भी बहुत हैं। एक सीधा और सरल अनुमान संसद में उपस्थित प्रतिनिधियों की संख्या के आधार पर लगाया सकता हैं। वर्तमान संसद के निचले सदन में 543 सदस्यों में से लगभग 300 सदस्य करोड़पति या अरबपति हैं और एक बड़ी संख्या में वैसे लोग हैं जो आपराधिक छवि के हैं। इसके अलावा शीर्ष स्थानों पर परंपरागत राजनितिक परिवारों या उत्तराधिकारियों का कब्ज़ा हैं। हालांकि समावेशी लोकतंत्र की दिशा में आर्थिक मोर्चे पर कुछ कार्य किए गए हैं जैसे मनरेगा, इंदिरा आवास योजना, सार्वजानिक वितरण प्रणाली। अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता हैं कि भारत का लोकतंत्र काफी संवेदनशील हैं और यह अपेक्षा करता हैं कि लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता सुनिश्चित हो।

अमित कुमार गुप्ता,
रामपुर नौसहन, हाजीपुर, वैशाली, बिहार

IAS **IGNITED MINDS** PCS

दर्शनशास्त्र, ETHICS, G.S., CSAT एवं निबंध के प्रशिक्षण का प्रामाणिक एवं विश्वसनीय संस्थान

पिछले 5 वर्ष में दर्शनशास्त्र (हिन्दी माध्यम) के सर्वोच्च रैंक एवं सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले सभी विद्यार्थी हमारे संस्थान से हैं।

सर्वोच्च रैंक

कर्मवीर शर्मा - 28th रैंक (2009)
शिवसहाय अवस्थी - 34th रैंक (2010)
मिथिलेश मिश्रा - 46th रैंक (2010)
प्रियंका निरंजन - 20th रैंक (2012)
धर्मेन्द्र कुमार - 25th रैंक (2012)

सर्वोच्च अंक

विशाल मलानी : 378 अंक (2009 बैच)
कर्मवीर शर्मा : 371 अंक (2010 बैच)
अमर बहादुर : 377 अंक (2011 बैच)
सुजाता : 36[illegible] अंक (2012 बैच)
मनोज कुमार : 30[illegible] अंक (2013 बैच)
(अब तक ज्ञात)

नि:शुल्क

गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम (Q.I.P.)

दर्शनशास्त्र द्वारा **अमित कुमार सिंह**

मुख्य परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के लिए 10 दिवसीय नि:शुल्क कक्षा कार्यक्रम

21 OCT. 8:30 am.

Highlights:

- ✓ मुख्य परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के लिए केवल (120 सीटें)
- ✓ पिछले पांच वर्षों में हमारा परिणाम किसी भी वैकल्पिक विषय पढ़ाने वाले संस्थान से सर्वाधिक (इस वर्ष भी 26 चयन)
- ✓ 10 दिवसीय गहन मुख्य परीक्षा कार्यक्रम, पिछले 25 वर्षों में सिविल सेवा में पूछे गये प्रश्नों के आदर्श उत्तर।
- ✓ इस वर्ष के सम्भावित प्रश्नों पर चर्चा।
- ✓ समकालीन दर्शन, सामाजिक राजनीतिक दर्शन के महत्वपूर्ण खण्डों पर कक्षायें।
- ✓ दर्शन के महत्वपूर्ण अवधारणाओं पर विशेष बल।
- ✓ लेखन कौशल सुधार पर विशेष कक्षायें।
- ✓ नामांकन, पहले आओ, पहले पाओ के आधार पर।
- ✓ पहले नामांकन आवश्यक

ETHICS By **AMIT KUMAR SINGH**

G.S. Paper-IV

मुख्य परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के लिए 5 दिवसीय नि:शुल्क कक्षा कार्यक्रम

7 OCT. 08:30 am.

Highlights:

- ✓ Emphasis upon foundational theories of Ethics
- ✓ Probable questions with model answers
- ✓ Special training for writing skill for questions on Ethics
- ✓ Extensive overview of entire syllabus covering every aspect, i.e., philosophical, administrative and psychological
- ✓ Practice sets for comprehensive preparation
- ✓ Only for students appearing in UPSC Mains 2013 examinations
- ✓ Only 120 seats
- ✓ Admission on first-come-first-served basis
- ✓ *Prior enrolment must*

सर्वाधिक टॉपर्स देने वाला विषय

दर्शनशास्त्र

द्वारा **अमित कुमार सिंह**

नया बैच प्रारम्भ **30 SEP. 11:15 am.**

TEST SERIES प्रारम्भ 22 SEP. 11 am.

दर्शनशास्त्र ETHICS निबन्ध

नामाकंन जारी

A-2, 1st Floor, Comm. Comp., Near Mukherjee Nagar, Delhi-09
PH. 9540131314, 011-27654704

H-1, First Floor, Madho Kunj, Katra, Allahabad
Ph. 9389376518, 9793022444

YH-149/2013

संपादकीय

अर्थव्यवस्था तो ठीक है, किंतु ....

1971 में ब्राज़ील की यात्रा पर गए एक महानुभाव ने वहां के तत्कालीन राज्य प्रमुख ऐमिलो मेडिसिन से देश की अर्थव्यवस्था के बारे में पूछा तो उनका उत्तर था, ''अर्थव्यवस्था तो ठीक है, परंतु लोग ठीक नहीं हैं''। ये उक्ति उस आर्थिक वृद्धि का विरोधाभास दर्शाती है जो न तो रोज़गार देती है और न ही ग़रीबी को कम करती है। आर्थिक वृद्धि, रोज़गार और निर्धनता के बीच घनिष्ठ अंतर्संबंध लंबे समय से अर्थशास्त्रियों के बीच बहस और विवाद का विषय रहे हैं। आर्थिक वृद्धि का लाभ शनैः-शनैः नीचे तक पहुंचने का सिद्धांत अब अपनी प्रासंगिकता खो चुका है। अब यह माना जाने लगा है कि रोज़गार सृजन और गरीबी दूर करने के लिए केवल आर्थिक वृद्धि पर्याप्त नहीं होगी। रोज़गार और निर्धनता पर आर्थिक वृद्धि का प्रभाव अन्य अनेक कारकों पर निर्भर करता है। आर्थिक वृद्धि रोज़गार सृजन, निर्धनता उपशमन-इन तीन लक्ष्यों के परस्पर संबंधों की समुचित गतिशीलता को व्यापक संदर्भ में समझने की आवश्यकता है।

आर्थिक वृद्धि किस सीमा तक निर्धनता में कमी लाने में मददगार हो सकती है, यह उसकी रोज़गार सृजन की क्षमता पर निर्भर करती है। भारत में, जहां आर्थिक वृद्धि की कुल दर प्रायः ऊंची रही है, रोज़गार सृजन की मात्रा और गुणवत्ता काफी कम है। अधिकतर रोज़गार कम उत्पादकता वाले अनौपचारिक क्षेत्र में पैदा हो रहे हैं। एक अनुमान के अनुसार 1999-2000 से 2009-2010 के बीच 6 करोड़ 30 लाख लोगों को नया रोज़गार मिला जिसमें से 70 प्रतिशत लोगों को असंगठित क्षेत्र में काम मिला। शेष सभी अनौपचारिक संगठित क्षेत्र में काम कर रहे थे। इसका सीधा संबंध अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र के अवदान में अनुपात रहित वृद्धि से है जो 1990-91 में सकल घरेलू उत्पाद के 41 प्रतिशत से बढ़कर 2012-13 में 64.8 प्रतिशत हो गयी थी, परंतु रोज़गार में सेवा क्षेत्र का अंश 30 प्रतिशत से भी कम था। दूसरी ओर, 2011-12 में विनिर्माण क्षेत्र का योगदान सकल घरेलू उत्पाद का 16 प्रतिशत था जबकि कुल रोज़गार में इसका हिस्सा 13 प्रतिशत के करीब था।

रोज़गार के अवसरों में अधिक वृद्धि की आर्थिक नीति के संदर्भ में दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ तेज़ी से उभरते देशों का अनुभव उपयोगी साबित हो सकता है। इन देशों ने श्रम बहुल उद्योगों में निवेश किया है। यहां निर्यातोन्मुखी उद्योगों पर विशेष ध्यान दिया गया जिनमें श्रमिकों की संख्या अधिक होती है। इस समूची प्रक्रिया में कृषि को भी प्रोत्साहन दिया गया ताकि औद्योगिक उत्पादों की तुलना में उसे बेहतर मूल्य प्राप्त हो और कृषि क्षेत्र में गैर कृषि गतिविधियों को प्रोत्साहन मिल सके। उच्च चालू खाता घाटे का हाल का अनुभव और रुपए का अवमूल्यन हमारी आर्थिक नीतियों को विनिर्माण क्षेत्र की ओर प्रोत्साहित करने और निर्यात में सुधार की आवश्यकता की ओर इशारा करता है। इसके लिए देश में बहुतायत से उपलब्ध श्रम बल का लाभ उठाना होगा। इस प्रकार, रोज़गार ही आर्थिक वृद्धि और निर्धनता उपशमन के बीच की निर्णायक कड़ी है। रोज़गार सृजन के लिए विनिर्माण क्षेत्र को बढ़ावा देने का यह एक उचित कारण है।

योजना आयोग ने हाल ही में ग़रीबी के जो आंकड़े प्रकाशित किए हैं उस पर काफी बहस हो रही है। ग़रीबी के आकलन के लिए प्रयोग की गई विधि के विरुद्ध विवादों और तर्कों के बावजूद इन आंकड़ों से भारत में ग़रीबी की कमी की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है। यदि हम 1993-94 से 2004-05 और 2004-2005 से 2011-12 की समयावधि पर ध्यान दें तो पाएंगे कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि (4.4 प्रतिशत से बढ़कर 6.9 प्रतिशत) आकस्मिक श्रमिकों के वास्तविक वेतन (3.1 प्रतिशत से बढ़कर 6.5 प्रतिशत) और कृषि उत्पादन (2.5 प्रतिशत से बढ़कर 3.9 प्रतिशत) में वृद्धि की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इससे स्पष्ट है कि महात्मा गांधी-नरेगा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली जैसी योजनाओं में अधिक व्यय का भी इस उपलब्धि के पीछे महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

निश्चय ही निर्धनता उपशमन, रोज़गार, सभी सामाजिक वर्गों और क्षेत्रों में आय का न्यायपूर्ण वितरण भारत की आर्थिक नीति के महत्वपूर्ण लक्ष्य रहे हैं। बाज़ार अर्थव्यवस्था को सही अर्थों में लोकतांत्रिक रूप देने के लिए आर्थिक वृद्धि का आधार व्यापक होना ही चाहिए। मानव पूंजी में निवेश इस प्रकार की व्यवस्था को सुस्थापित करने की दृष्टि से अनिवार्य हो जाता है, ताकि लोग बाज़ार के बढ़ते अवसरों का लाभ उठा सकें। सरकारी योजनाओं के माध्यम से समाज के कमजोर वर्गों तक संसाधनों का हस्तांतरण करने की आवश्यकता है परंतु उनकी रूपरेखा, समूची अर्थव्यवस्था के प्रोत्साहन ढांचे पर तथा भोजन और श्रम के लिए बाज़ार पर इसके जटिल प्रभाव को ध्यान में रखकर तैयार की जानी चाहिए। प्रमुख चुनौती उत्पादक प्रक्रिया को लोगों के बीच अधिक व्यापक बनाने और समान रूप से वितरित करने की है। आखिरकार, जैसाकि अमर्त्यसेन ने कहा है, आर्थिक वृद्धि अमूल्य मानवीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने की दिशा में एक साधन है न कि अपने-आप में कोई लक्ष्य। ऐसा होने पर ही यह कह पाना संभव होगा कि अर्थव्यवस्था की स्थिति भी अच्छी है और लोग भी खुशहाल हैं। ❑

Career Launcher News www.careerlauncher.com/civils

CL

सिविल सेवा अभ्यर्थी

CL Civil Services Notice No. 2013-14 October 2013

CL के 700+ छात्र सिविल सेवा मुख्य परीक्षा 2013 लिखेंगे

सिविल सेवा (प्रारम्भिक) परीक्षा में सफल होने के लिए कट - ऑफ का 75% तक आप GS-II (CSAT) में ही पा सकते हैं

हमारे कई छात्रों ने यह कर दिखाया!!!

CL पंजीकरण संख्या	नाम	UPSC क्रमांक	CSAT में प्राप्त अंक	सिविल सेवा '12 के कट - ऑफ(209) के प्रतिशत के रूप में CSAT के प्राप्तांक
2317944	अंजली रजोरिया	383867	177.5	84.93
2792641	दीपक सोलंकी	000192	174.18	83.34
2793274	साकेत सिन्हा	006040	166.68	79.75
2793492	निशांत कुमार	022822	164.18	78.56
2196326	स्वाति गर्ग	080713	163.33	78.15
2792131	सुनील सिंगला	012752	161.68	77.36
2317287	राहुल कराले	000861	159.18	76.16
2316690	सुमित भाटिया	041826	158.33	75.76
2195852	साक्षी साहनी	126453	158.33	75.76
2793488	अग्निवेश	026380	157.5	75.36
2196195	राहुल कुमार	162996	157.5	75.36
2317945	सिद्धार्थ रजोरिया	377464	155.83	74.56
2196454	रवि सिंह	108294	155.83	74.56
2792518	गौरव अग्रवाल	024650	155	74.16
2317617	सौरभ भल्ला	008294	155	74.16

+CL शोध टीम के अनुसार

कक्षा कार्यक्रम में शामिल है 200 घंटो से भी अधिक की तैयारी

124+ घंटों का कक्षा प्रशिक्षण : 60+ घंटों की प्रीलिम्स टेस्ट सीरीज और विश्लेषण : 22+ मॉड्यूल टेस्ट और रीविजन

CSAT '14 के बैच की जानकारी के लिए अपने नजदीकी CL (सिविल सेवा) सेंटर से संपर्क करें

CL | Civil Services Test Prep

www.careerlauncher.com/civils

Delhi: Mukherjee Nagar: 41415241/6 | **Rajendra Nagar**: 42375128/9 | **Ber Sarai**: 26566616/17
Ahmedabad: 9879111881 | **Allahabad**: 3293666 | **Bhopal**: 4093447 | **Bhubaneswar**: 2542322
Chandigarh: 4000666 | **Gorakhpur**: 2342251 | **Indore**: 4244300 | **Jaipur**: 4054623
Lucknow: 4107009 | **Patna**: 2521800 | **Pune**: 32502168 | **Varanasi**: 2222915 /CLRocks @careerlauncher

YH-152/2013

ग़रीबी का आकलन

● टी.सी.ए. अनंत

भारत में ग़रीबी को मापने का काम लंबे और परंपरागत ढंग से होता रहा है। आज़ादी से पहले दादाभाई नौरोजी ने भारत में ब्रितानी शासन के परिणामों के रूप में ग़रीबी के आकलन पर विचार रखे थे। उनकी किताब ''ग़रीबी और भारत में गैर ब्रिटिश शासन'' में बताया गया था कि किस तरह अंग्रेज शासन की नीतियों के चलते भारत की संपदा और समृद्धि का दोहन किया जा रहा है। इसी किताब के ज़रिये बहुत से बुद्धिजीवियों ने स्वतंत्रता के लिए तर्क-वितर्क की शुरुआत की थी। इसी तरह से स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कांग्रेस पार्टी और बहुत से जाने माने विद्वानों ने इस पर काम किया था। श्रीनिवासन (2007) ने इसकी पृष्ठभूमि की काफी विस्तृत तरीके से समीक्षा की है। ये कोई कमबयानी नहीं कि इस तर्क ने भारत के विकास अध्ययन के क्षेत्र में भी बड़ा योगदान दिया।

ग़रीबी का अनुमान महज़ अध्ययन की बात नहीं है– वर्ल्ड बैंक स्पष्ट कर चुका है कि ग़रीबी उसके लिए सबसे महत्वपूर्ण विषयों में एक है, जब संयुक्त राष्ट्र ने सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों को निर्धारित किया, तब कहा था कि उसका पहला लक्ष्य अत्यधिक ग़रीबी और भूख को जड़ से उखाड़ फेंकना है। विकास नीतियों पर जब भी बात हुई है, ग़रीबी का मुद्दा उसमें मुख्य रहा।

इस परिप्रेक्ष्य में ग़रीबी अनुमान के लिए तीन तरह के लक्ष्यों पर काम किया गया–

1. ग़रीबी पर जागरूकता बढाना और इसे हमेशा चर्चा के एजेंडे में रखना।
2. इस तरह नीतियां, कार्यक्रम और संस्थाएं बनाई जाएं कि ग़रीबी कम हो सके।
3. उन नीतियों, कार्यक्रमों और संस्थाओं की निगरानी और मूल्यांकन, जो इससे जुड़े हों।

इनमें से हर लक्ष्य आंकड़ों और अनुमान के तौर तरीकों पर बहुत कठिन आवश्यकताओं की मांग करता है। एक तर्क आसानी से दिया जा सकता है कि बाद के दो लक्ष्य एक नहीं बल्कि बहुत से लक्ष्यों से मिलकर बने हैं, इसलिए सिद्धांत तौर पर ग़रीबी को मापने के कई तरीके हो सकते हैं। आमतौर पर हम उम्मीद करते हैं कि पहले और दूसरे लक्ष्य के कुछ तत्वों के बीच तुलना करने में खुद को फोकस करें।

जहां तक पहले लक्ष्य की बात है इसके बारे में आसानी से समझा जा सकता है। दादाभाई नौरोजी की 1901 में प्रकाशित किताब का उद्देश्य भारत में ब्रिटिश शासन को लेकर बढ़ते विरोध की वजहों के बारे में ब्रितानी लोगों को बताना ही नहीं था बल्कि प्रभावित भी करना था। इसका मूल आशय ग़रीबी को राजनीतिक तौर पर चर्चा में लाकर नीतियों को प्रभावित करना था। इसमें से एक लक्ष्य को कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना कमेटी और बांबे प्लान के लेखकों द्वारा आज़ादी से पहले दोहराया गया और हाल में योजना आयोग ने भी ऐसा ही किया।

ग़रीबी का अनुमान महज़ अध्ययन की बात नहीं है– वर्ल्ड बैंक स्पष्ट कर चुका है कि ग़रीबी उसके लिए सबसे महत्वपूर्ण विषयों में एक है, जब संयुक्त राष्ट्र ने सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों को निर्धारित किया, तब कहा था कि उसका पहला लक्ष्य अत्यधिक ग़रीबी और भूख को जड़ से उखाड़ फेंकना है।

इन सभी बातों में सामान्य बात सामाजिक तौर पर न्यूनतम स्वीकृत मानदंडों को अपनाना है, जो मनुष्यों के लिए सबसे ज़रूरी है यानि अच्छा स्वास्थ्य और उपयुक्त स्थितियां। ऐसा करने के बाद लक्ष्य रखा गया कि आबादी के प्रतिशत के हिसाब से ग़रीबी का आकलन किया जाए। जो औसतन कुछ तय समय-सीमा के लिए हो। हो सकता है कि कुछ क्षेत्रों में ये दिशा-निर्देश खरे नहीं उतरें।

घरों पर सर्वेक्षण करने का आधार तय सीमा-बिंदुओं के आधार पर होता है। हमारे देश में सर्वेक्षण आमतौर पर इलाकों और समुदायों के आधार पर होते हैं। भारत में परिवारों के कुल उपभोक्ता व्यय का सर्वेक्षण वर्ष 1970 से होता आ रहा है। इसका योजना आयोग के कार्यबल द्वारा वर्ष 1979 में तय किया गया। इसका आकलन हर राज्य के ग्रामीण और शहरी इलाकों में अलग तरह से होता है। इससे हासिल जानकारी ही हमारी ग़रीबी से संबंधित चर्चा और विचार-विमर्श का आधार होती है।

अब दूसरे उद्देश्य पर आते हैं, इसका मुख्य लक्ष्य कार्यक्रमों और नीतियों को इस तरह बनाना है कि उद्देश्यों की प्राप्ति बेहतर ढंग से हो सके। कुछ ऐसा ही विश्व बैंक की हैंडबुक कहती है कि बिना पर्याप्त जानकारी के ग़रीबों की मदद नहीं की जा सकती। मुख्य उद्देश्य ये होना चाहिए कि कार्यक्रम इस तरह बनाए जाएं कि और स्रोतों को इस तरह बांटा जाए कि ये ज़रूरतमंदों तक सही ढंग से पहुंच सकें। लक्ष्य या तो बड़ा हो सकता है या बहुत ही बेहतर। ग़रीबी की स्थिति जानने के बाद कार्यक्रमों के मद्देनजर क्षेत्र या ग़रीबी के हिसाब से कार्यक्रम बनाए जाएं।

विकल्प के तौर पर बेहतर लक्ष्यीकरण के लिए सीधे लाभार्थियों को तलाशा जा सकता है। ऐसा लक्ष्यीकृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली या इंदिरा आवास योजना के ज़रिये किया जा सकता है। इससे लाभार्थियों का पता लगाने की मांग भी की जा सकती है। जहां प्रोफाइल के आधार पर लाभार्थियों की संख्या का रिकार्ड दर्ज रहता है। ये स्पष्ट है कि अगर लक्षित वर्ग के विकास के लिए पहले लक्ष्य की रूपरेखा का उपयोग किया जाए तो हमें बेहतर और अधिक गहन ग़रीबी प्रोफाइल के आंकड़े न केवल हासिल हो सकते हैं बल्कि उनका इस्तेमाल भी किया जा सकता है। सवाल हो

2011-12 (चयनित राज्य)

ग़रीबी रेखा से नीचे का प्रतिशत (तेंदुलकर विधि)

2011	ग्रामीण					शहरी				
	पूरा साल	एसआर1	एसआर2	एसआर3	एसआर4	पूरा साल	एसआर1	एसआर2	एसआर3	एसआर4
आंध्र प्रदेश	10.96	14.8	10.7	9.5	9.3	5.81	9.4	8.2	7.2	6.3
आसाम	33.89	37	32.7	34	30	20.49	17.6	24.3	20.5	18.3
बिहार	34.06	31.8	39.8	34.9	30.6	31.23	30.2	39.5	23.7	32
छत्तीसगढ़	44.61	50.8	50.8	41.6	31.2	24.75	25.6	23.5	26	21.9
गुजरात	21.54	26	26	18.6	15.9	10.14	14.4	11.1	9.2	9.2
हरियाणा	11.64	12	11.3	15.6	8.2	10.28	14.8	9.2	7.5	8.3
जम्मू-कश्मीर	11.54	17.4	9.6	10	9	7.2	9.1	8.6	6.6	8.5
झारखंड	40.84	42.5	43.4	34.9	36.3	24.83	25.3	31.5	20.1	15.5
कर्नाटक	24.53	29.3	25.2	21.7	20	15.25	16.6	17.1	13.2	15.7
केरल	9.14	11.6	10	9.2	9.4	4.97	9.4	8.1	7.3	8.5
मप्र	35.74	43.6	45	34.6	31.4	21	27.8	22	20.3	15
महाराष्ट्र	24.22	33.2	23.8	25.7	17.5	9.12	13	9.2	8.2	9
ओडिशा	35.69	44.5	31.6	37.7	30.4	17.29	16.8	16.2	17	20.8
पंजाब	7.66	8.6	8.6	8.3	8.7	9.24	8.6	9.5	11.3	9.4
राजस्थान	16.05	17.8	16.5	18	14.5	10.69	12.4	13.4	8.6	8.9
तमिलनाडु	15.83	18.3	18.7	18	10	6.54	10.9	8.3	8.2	6.4
उत्तर प्रदेश	30.4	33.5	32.4	28.4	26.7	26.06	31.1	27.7	29	18
प. बंगाल	22.52	26.5	21.4	24	16.8	14.66	16.1	17.6	15.3	12.4
अखिल भारत	25.7	28.1	26.9	25.6	22	13.7	16.2	14.5	13.5	10

** ग़रीबी का प्रतिशत प्रत्येक दशमलव में रैखिक प्रक्षेप पर आधारित हैं। इस कारण न्यूनतम दशमलव वर्गों में आंकड़ों में अंतर आ सकता है।*

सकता है कि ये कैसे उचित है? इस सवाल के जवाब में पहले उद्देश्य के लिए उत्पन्न प्रोफाइल के सांख्यिकी गुणों को समझने की ज़रूरत है।

ग़रीबी रूपरेखा के सांख्यिकी गुण

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ग़रीबी का अनुमान नमूनों के अनुपात की एक ऐसी गणना है, जिसे आमतौर पर तय सीमा बिंदुओं के आधार पर नहीं हासिल किया जा सकता, इसके सांख्यिकीय गुणों का अनुमान सांख्यिकी विश्लेषण की औपचारिक तकनीक से ही जाहिर किया जा सकता है। आबादी में सामाजिक संस्तरीकरण के ज़रिये परिवारों की माप प्रक्रिया विभिन्न चरणों में की जाती है। फिर देखा जाता है कि परिवार ने एक तय समय में कितनी खपत की।

सर्वेक्षण के एक तय समय के नमूनों के आंकड़ों के क्रमों के ज़रिये अनुमान लगाया जाता, जो संभव है निर्धारित कसौटियों पर खरा नहीं उतरे। ये सही अनुपात से कई कारणों से अलग हो सकता है–

पहला कारण– आमतौर पर आबादी के लिए गए नमूनों का अनुमान वास्तविक आबादी से अलग होगा, ये अंतर नमूनों की प्रकृति पर निर्भर करेगा, जिसे आमतौर पर सैंपलिंग की गलती कहते हैं।

दूसरा कारण– परिवार के लोगों की वास्तविक खपत संभव है कि बताई गई खपत से अलग हो, ऐसा जांच के लिए तय किए प्रतिदर्श की प्रकृति के कारण होगा।

इसे याद करने के लिए प्रतिवादी और उससे की गई पूछताछ और प्रतिवादी की प्रतिक्रिया को समझकर पूछने वाले की समझने की क्षमता पर निर्भर करेगा। ये जांच प्रक्रिया की लंबाई और बातचीत के कई अन्य तरह के विचारों के वास्तविक तौर तरीकों की व्यक्तिपरक कारकों की किस्म से प्रभावित होती है। मुद्दों का ये वर्ग गैर नमूना त्रुटि कहा जाता है।

इन दोनों मुद्दों को अच्छी तरह से सांख्यिकीविदों के लिए जाना जाता है और वे इन सर्वेक्षण डिजाइन्स को कई तरीक़ों से देखते हैं। आकलन पर समग्र असर को विश्लेषणों में ग्रहण किया जाता है। इस त्रुटि का आकार भी प्रतिदर्श की डिजाइन और आकार पर निर्भर करता है। बदले में अनुमानों में विघटन की इच्छित डिग्री का प्रभाव भी देखा जाता है। इस तरह पूरे भारत का सालभर का अनुमान लगा लिया जाएगा, जिसमें त्रुटि सबसे न्यूनतम स्तर की होगी। वहीं राज्यों, जिलों और उप चरण से प्राप्त सर्वेक्षण के अनुमान में त्रुटियां उच्चतम स्तर की हो सकती हैं।

विभिन्न तरह से ग़रीबी अनुमानों पर चर्चा की प्रासंगिकता इसलिए है क्योंकि जब इन अनुमानों का इस्तेमाल एक क्षेत्र की तय आबादी पर फैसला लेने के लिए किया जाता है, तो त्रुटियों को अनुमानित तौर पर समाविष्ट किया जाता है या छोड़ दिया जाता है। इस संबंध में चयन प्रक्रिया में ये त्रुटि को समावेश करता है या हटा देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो अगर चयन प्रक्रिया के आपरेशन में कोई त्रुटि तभी नहीं होगी अगर सर्वेक्षण के परिवार के लोगों या अलग अलग व्यक्तियों को सही

तरीके से जोड़ा या बाहर रखा गया हो, जो आमतौर पर होता नहीं है।

ये अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है लिहाज़ा सही लक्षित तंत्र ऐसी त्रुटियों को सुधारने के लिए एक कारक से पहले अभ्यास में निकाली गलतियों के अनुमान समायोजित करेगा । विभिन्न त्रुटियां समायोजन फार्म पर भी निर्भर करेंगी। प्रस्तावित खाद्य सुरक्षा तंत्र में गलत समावेश देखने को मिल जाता है। लक्षित जनसंख्या पर मानव त्रुटि इस पर भी निर्भर करेगी कि सर्वेक्षण गणना में ग़रीबों की संख्या औसत संख्या से अधिक है या नहीं। हम इन्हें जांचने के लिए वर्ष 2011-12 के नेशनल प्रतिदर्श सर्वेक्षण (एनएसएस) के 68वें राउंट के आंकड़े पर भारत में ग़रीबी आकलन के इतिहास की संक्षिप्त समीक्षा करने के बाद नजर दौड़ाएंगे।

भारत में ग़रीबी आकलन

देश का योजना आयोग ग़रीबी का अनुमान वर्ष 1979 से परिवारों, खपत और व्यय के एनएसएस सर्वेक्षण से मिले आंकड़ों के आधार पर लगाता रहा है। इसके आकलन का तरीक़ा योजना आयोग की टास्क फोर्स की रिपोर्ट (1979) में बताया गया है। टास्क फोर्स शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ग़रीबी की एक रेखा तय करता है। उन्होंने पहले एक औसत कैलोरी नॉर्म तय किया। फिर इसमें उम्र, लिंग और आबादी की गतिविधि के अनुसार काम किया। इस नॉर्म को 1972-73 में एनएसएस उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण के आधार पर तय किया गया। इसे उस समय ग़रीबी रेखा के लिए आधार वर्ष माना गया। आधार वर्ष रेखा उसके बाद से लगातार मुद्रास्फीति के अनुसार संशोधित होती रही है। अनुवर्ती बरसों में ग़रीबों के प्रतिशत की गणना को खपत व्यय वितरण को एनएसएस के तमाम सर्वेक्षण में खपत स्तर के समायोजन के साथ रहस्योदघाटित किया गया ताकि घरों के खपत को राष्ट्रीय खातों के अनुमान के साथ लाया जा सके।

इस आकलन ने तमाम लोगों का ध्यान खींचा और चर्चाओं को जन्म दिया, इसकी आलोचनाएं भी हुई। तब योजना आयोग ने तय किया कि एक विशेषज्ञ (1973) द्वारा समग्र समीक्षा का फैसला लेगा। इस ग्रुप ने अपनी रिपोर्ट में लिखा-जो तरीके ग़रीबी के आधिकारिक आकलन में अपनाए गए।... कुछ की नज़र में ये भारत में ग़रीबी की सही तस्वीर पेश करने के मामले में बेमेल और अपर्याप्त हैं। हक़ीक़त ये है कि राज्य स्तर पर ग़रीबी के अनुमानों के इस्तेमाल से ग़रीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में हटाने के लिए जो योजना स्रोत आवंटित किए गए, उन्होंने इन चर्चाओं को और तीखा कर दिया। लिहाजा राज्य ग़रीबी आकलन को लेकर बहुत संवेदनशील हो गए।

कार्यबल की प्रक्रिया में कुछ बदलाव और समायोजन के सुझाव दिए गए, इसमें राष्ट्रीय खातों से संपर्क ख़त्म करने का सुझाव भी था। साथ ही अंतरराज्यीय मुद्रास्फीति के अलग होने की अनुमति भी दी। उसने थोक मूल्य को बदल कर सीपीआई को मुद्रास्फीति आधार बनाने की बात कही लेकिन आवश्यक नार्म वही रहा जो पहले कार्यबल में था। परिणाम सांख्किीय गुण बदले बिना अनुमान के स्तर पर समायोजन लाने के लिए किया गया था।

इस तरीके का विश्लेषण भी हुआ और आलोचना भी। आलोचनाएं मूल्य समायोजन के लिए इस्तेमाल में लाए जाने वाले तरीके को लेकर थीं, ग़रीबी में शहरी-ग्रामीण का अंतर 1973 बास्केट की ग़रीबी तुलना में लगातार प्रासंगिक बना रहा। लक्ष्यीकृत कार्यक्रमों के ज़रिये जिस तरह ग़रीबों की गणना की जा रही थी, वो भी चिंता का कारण बनी। प्रोफेसर तेंदुलकर की अध्यक्षता में बनी एक्सपर्ट कमेटी ने भी इसे इंगित किया। कमेटी की रिपोर्ट में इन चिंताओं को उनकी जटिल प्रक्रिया के लिए जाहिर किया गया-उन्होंने कैलोरी नार्म के साथ इसे जोड़ने को औपचारिक तौर पर हटाने का सुझाव दिया। जिसे बाद में विशेषज्ञ समूह ने लागू भी किया, क्योंकि उन्होंने 1973 के लिए बने नार्म से जुड़े व्यय के लिए संस्तुति दी। हालांकि इसमें बास्केट में आने वाली वस्तुओं में कोई बदलाव नहीं किया गया।

कमेटी ने सुझाव दिया कि 2004-05 के लिए शहरी ग़रीबी दर को पहले के तरीकों से संदर्भ दर की तरह मापा जाए। इसे वस्तुओं की उस बास्केट से जोड़ें जो नये मापदंडों संबंधी बास्केट हो, जो शहरी और ग्रामीण दोनों इलाक़ों के परिवारों पर लागू हो। फिर इस खर्च को मूल्य आंकड़ों का इस्तेमाल इसे एनएसएस सर्वेक्षण के तहत मध्यमवर्गीय परिवार वर्ग के लिए यूनिट वैल्यू के तौर पर लाया जाए। इससे अतीत से सतत तुलना जारी रहेगी, हालांकि शहरी ग़रीबी रेखा और उपलब्ध ग़रीबी अनुमान कुछ ज्यादा ऊंचे स्तर के होंगे। इस दृष्टिकोण में लक्ष्य के उद्देश्य के लिए साफ तौर पर ग़रीबी के अनुपात का अनुमान कम लगाने संबंधी केंद्रीय चिंताओं को नहीं देखा गया, ये एक ऐसी चिंता थी जो खुद में खासी बड़ी, कुछ हद तक एक जैसी और सार्वजनिक बहस को जन्म देने वाली थी ही साथ ही एक अलग विशेषज्ञ समूह की ओर ले जाने वाली भी थी, जिसकी रिपोर्ट का अभी इंतजार है।

हम देख सकते हैं कि हर तरह की आलोचना में सामान्य तत्व ये था कि अनुमान बहुत कम हैं। इसकी प्रतिक्रिया संशोधन से इसके स्तर को समायोजित करने की थी। इससे को एक ख़ास पहलू गायब हो गया कि लक्ष्यीकृत प्रणाली में ग़रीबी मानव वैसे तय किए जाएं। एनएसएस सर्वेक्षण में जिस तरह खपत को मापा गया या अन्य ग़रीबी सर्वेक्षण में उसे जिस तरह मापा गया, वह संकल्पना के तौर पर जटिल है और उसे जनगणना के ज़रिये मापना संभव नहीं। लक्ष्यीकृत प्रणाली को लेकर सामान्य दृष्टिकोण ये है कि कुछ ऐसी सुस्पष्ट विशेषताएं विकसित की जाएं जो केवल आबादी को मापने और खपत ग़रीबी प्रोफाइल से संबद्ध की जा सकें। ये विशेषताएं खासकर वो हैं जो जनगणना में शामिल की जा सकें और बाद में आमतौर पर स्थिर रहें। इसके बाद इन्हें अधिकृत और आबादी से अलग कर छांटा जा सके, जो आमतौर पर ग़रीबी रुपरेखा और खपत सीमाओं जैसे विषय पर आधारित हों। विवाद इसलिए उठा, क्योंकि ये सीमाएं बड़ी त्रुटियों को मिलाकर औसत मानव पर तय की गई थीं।

हमारी पहले की चर्चाओं में हमने कहा था कि फैसलों में सीमारेखा औसत का इस्तेमाल समावेश या बहिष्कार में गलतियों की आशंकाएं बढ़ा देता है। इन गलतियों को मापन की भिन्नताओं से जोडना चाहिए। इसे तलाशने के लिए उपयोगी होगा कि इसके बदले मौजूदा नेशनल प्रतिदर्श सर्वेक्षण उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण में तब्दीलियां लाएं।

एनएसएस उपभोक्ता व्यय सर्वेक्षण जुलाई से जून तक पूरे एक वर्ष का किया जाता है (इसे चरण कहते हैं, इसलिए 68वां चरण 01जुलाई 2011 से 30 जून 2012 तक हुआ)।

इसके बाद सर्वेक्षण अवधि को आगे चार उप चरणों में बांट दिया गया। हरेक की अवधि तीन महीने की होती है। पहला उप चरण पीरियड जुलाई से सितंबर, दूसरा उप चरण पीरियड अक्टूबर से दिसंबर और इसी तरह आगे होता है। हर चार उप चरणों के दौरान सर्वेक्षण के लिए एक बराबर गांव/ब्लाक (एफएसयूज) आवंटित किए जाते हैं। इसलिए हर सब राउंज अपने आपमें एक स्वतंत्र प्रतिदर्श क्षमता काला होता है, जिससे समूचे और हर राज्य के लिए अलग अनुमान उत्पन्न होता है। बेशक प्रतिदर्श के ज़रिये समूचे सालभर की ग़रीबी का आकलन किया जाता है, लेकिन सिद्धांत तौर पर ये संभव है कि हर उप चरण के आंकड़ों को भी देखा जाए।

कृषि वर्ष के साथ एनएसएस वर्ष की पहचान और वृहद कृषि सत्रों के साथ उप चरणों, ये अपेक्षित है कि कुछ सीजनल अभिलक्षण आंकड़े में होंगे। इसलिए एनएसएस कर्मचारी सर्वेक्षण के विस्तृत परिणाम, जिसे 2009-10 से उपभोक्ता सर्वेक्षण के साथ साथ रखा जाता है, ये दिखाता है कि आकस्मिक वेतनभोगी मज़दूरों की प्रतिदिन औसत कमाई शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पुरुषों और महिलाओं के लिए उप चरण 01 में सबसे कम रहती है। सार्वजनिक कामों में भी औसत साप्ताहिक मेहनताना में भी ऐसा ही होता है। ये दिखाता है कि शायद इन कामों के लिए सबसे कम पैसा इसी पीरियड में मिलता है। उप चरण 1 में सबसे ज्यादा घटनाएं बेरोजगारी की भी होती हैं। अगर हम सप्ताह में काम के कार्यदिवस को देखें तो उप चरण 1 में लोगों द्वारा हफ़्ते में सातों दिन काम पाने की स्थिति सबसे कम रहती है और किसी दिन काम नहीं करने का अनुपात सबसे ज्यादा होता है।

ग़रीबी के साथ रोजगार और कमाई के नजदीकी संबंध को देखें तो किसी को भी उम्मीद करनी चाहिए ग़रीबी में ऐसी ही बानगी होती है। इसके लिए टेबल में कुछ राज्यों के बारे में जानने की कोशिश की गई। ऐसा राज्य स्तरीय ग़रीबी रेखा को पूरे साल के लिए हर उप चरण के हिसाब से देखा गया और इसके दिलचस्प बातें पता चलीं।

1. जैसी की उम्मीद थी कि पहला सब राउंज और आमतौर पर दूसरा उप चरण ग़रीबी के उच्चतम स्तर को दिखाता है। इसी तरह चौथा उप चरण आमतौर पर ग़रीबी के न्यूनतम अनुपात का होता है।
2. 18 राज्यों में अगर हम सबसे ग़रीब लोगों की जांच करें तो ये छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार और ओडिशा में होंगे। हालांकि अंतर रैंकिंग उप चरण पर निर्भर करेगी। इस तरह पहले और तीसरे उप चरण में सबसे ग़रीबों के मामले में ओडिशा, छत्तीसगढ़ के बाद दूसरे नंबर पर है। वहीं झारखंड चौथे उप चरण में सबसे ग़रीब निकला।
3. ग़रीबी का अनुपात भी अलग उप चरण में तेजी से बदला। जैसे छत्तीसगढ़ के मामले में ग़रीबी का अनुमान ग्रामीण क्षेत्रों में 19 फीसदी अंकों का रहा तो पूरे राज्य में 16 अंकों का। वास्तव में मध्य प्रदेश, ओडिशा और महाराष्ट्र में भी बड़े पैमाने पर उप चरण में बड़े पैमाने पर ग़रीबी अनुपात में भिन्नता देखी गई। चौथे उप चरण में ग़रीबी की दर किसी भी अन्य उप चरण की तुलना में सबसे कम दिखी। अधिक विकसित कहे जाने वाले राज्यों पंजाब और केरल में उप चरण में ये भिन्नता दिखी। सामान्य तौर पर बड़े और ग़रीब राज्यों में बेहतर राज्यों की तुलना में सीजनल भिन्नता ज्यादा दिखी।
4. सीजनल भिन्नता समस्या का एक अंग है। ये संबंधित ढांचे से जुड़ा सवाल भी है। अगर सीजनल सह संबंध ग़रीबी की रुपरेखा से परे कम रहती है तो कुल माप केवल सामान्य औसत नहीं हो सकती लेकिन बड़ी राशि होगी। हम आसानी से इसके आपसी संबंधों को माप नहीं सकते।

विकसित राज्य, जो रोज़गार की दृष्टि से कम सीजनल भिन्नता वाले हों और जहां ग़रीबी उन्मूलन के कार्यक्रम मज़बूती से चल रहे हों तो उनका सह संबंध भी ऊंचा दिखता है। लेकिन दूसरे मामलों में ये संबंध नीचे भी रह सकते हैं। अंतर सीजनल रेंज का हमारा मापक इस संभावना का आंशिक इंडीकेटर भी है। इसलिए सुझाव दिया जाता है कि अगर हमारी चिंता लक्ष्य की सत हो तो हमें अखिल भारतीय मानकों की ओर देखना चाहिए जो सीजनल व्यस्त होने की स्थिति में धन राशि बढ़ा देता है। अंतर राज्य का परिमाण और यहां तक कि उच्चतम अंतर राज्य सीजनल विभिन्नता सुझाव देती है कि इस तरह की भिन्नता बढेगी इसलिए सब स्टेट स्तरीय मापकों में हमें थोड़ा नीचे आना होगा। ग़रीबी में डूबे पिछड़े जिलों में सीजनल भिन्नता का स्तर ज्यादा होता है।

निष्कर्ष

इस लेख में हमने जाना ग़रीबी मापने के लिए मूलभूत दृष्टिकोण क्या होना चाहिए और इसे किन क्षेत्रों में इस्तेमाल किया जाना चाहिए। हमारी चर्चा में ये भी बताया गया कि माप के डिजाइन का उपयोग किस तरह किया जाना चाहिए। खासतौर पर ग़रीबी के उपायों पर लक्ष्यपूर्ण उद्देश्य लागू करके और इसे भी समावेश और निवारण त्रुटियों को लेकर संवेदनशील होना चाहिए।

हमें परिवर्तनशीलता के चलते स्रोतों और संरचनाओं का पता लगाना चाहिए ताकि ग़रीबी अनुमान सही तरीके से और सही डिजाइन के ज़रिये लक्ष्यीकृत करके निकाले जा सकें। आंशिक तौर पर विचरण की प्रकृति ने तमाम गलतफहमियों को जन्म दिया है बल्कि जटिलता भी बढ़ा दी है। हो सकता है कि सर्वेक्षण के दौरान कहीं प्रतिदर्श डिजाइन की भी गलतियां हों लेकिन सही बात ये है कि ये प्रक्रिया ही अपने आपमें पूर्ण नहीं लगती। मौजूदा अध्ययनों से ये भी पता चलता है कि विचरण और सहप्रसरण को गहरे विश्लेषण के तौर पर विकसित करने की आवश्यकता स्पष्ट रूप से नहीं की गई। हम अभी भी आर्थिक गतिविधि को सीजनल बदलावों यानि मौसमी बदलावों के साथ मापते हैं, जो उचित नहीं है और न ही इससे स्पष्ट तस्वीर सामने आती है, ज़रूरी है कि ग़रीबी को स्वास्थ्य व्यय, आर्थिक और जनसांख्यिकीय चक्र, प्राकृतिक आपदाओं के साथ देखें ताकि ग़रीबी की गतिशीलता को समझने के लिए बेहतर अध्ययन विकसित किया जा सके।

वर्तमान सर्वेक्षण भेद आधारित और उपभोक्ता व्यय की बारीकियों पर बड़े पैमाने पर केंद्रित है। ग़रीबी मुख्यत: खपत वितरण की एक वितरणात्मक विशेषता है। हमें सिद्धांत तौर पर खपत के कुछ मोटे उपायों को लेना चाहिए। ❑

(लेखक भारत सरकार के मुख्य सांख्यिकिविद और सांख्यिकी तथा कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय में सचिव हैं।

ई-मेल : tca.anant@gmail.com)

रोज़गार और आर्थिक वृद्धि : नीतियां और रुझान

● एस. महेंद्र देव

उत्पादक रोज़गार का विस्तार करना कम आय वाले देशों में निरंतर ग़रीबी कम करने और खाद्य सुरक्षा के लिए प्रधान है, जैसे अधिकतर निर्धनों के लिए श्रम एक मुख्य परिसंपत्ति है। इसे रोज़गार की उच्च उत्पादन लोच के रूप में भी जाना जाता है जो आम तौर पर समतावादी विकास को सुनिश्चित करता है। भारत में पिछले दो दशकों का अनुभव यह दर्शाता है कि तीव्र आर्थिक वृद्धि के बावजूद जो रोज़गार के अवसर बनाए गए वे अपर्याप्त थे।

रोज़गार रहित आर्थिक वृद्धि एक चिंता का विषय है लेकिन दूसरी तरफ, हमें आर्थिक वृद्धि रहित रोज़गार नहीं चाहिए। दूसरे शब्दों में, आर्थिक वृद्धि के बिना रोज़गार पैदा करने का नीति-निर्धारण नहीं होना चाहिए। हमें उत्पादनशील रोज़गार लाने होंगे।

सर्वप्रथम इस शोध-पत्र में विकास और रोज़गार के रुझानों को देखें। दूसरे, उत्पादनशील रोज़गार को पैदा करने के लिए नीतियों पर चर्चाएं हों। भारत जैसे देश में अधिशेष श्रम के साथ एक रोज़गार उन्मुख विकास के महत्व को बेहतर तरीके से समझा जाता है। हालांकि, रोज़गार उत्पादन पर अत्यधिक बल के बिना किसी संबंध के उत्पादकता और श्रमिकों की आय भी वांछनीय नहीं है विशेष रूप से भारत में, जहां उत्पादकता और आय के स्तर बहुत निम्न हैं। इसलिए, नवीन रोज़गारोत्पादन को बढ़ते स्तर पर होना ज़रूरी है ताकि ग़रीबी की प्रकृति को स्थाई न मान लिया जाए। (पपोला, 2012)

आर्थिक वृद्धि और रोज़गार के रुझान

तालिका 1 जीडीपी विकास, रोज़गार वृद्धि, उत्पादकता वृद्धि, 1970 के दशक के बाद से सकल घरेलू उत्पाद के संबंध में रोज़गार का लोच प्रदान करती है। रोज़गार के लोच में (1970 के दशक में 0.52 से 2000 के दशक के उत्तरार्ध में 0.02) लगातार गिरावट आई है।

भारत की कहानी से यह प्रतीत होता है कि अपेक्षाकृत उच्च आर्थिक वृद्धि 'रोज़गार रहित' नहीं रहा लेकिन इसकी रोज़गार सामग्री को निम्न किया गया। ठीक 1980 के दशक के बाद के दशकों में तेज़ी से गिरावट आई। कुल मिलाकर यह पता चलता है कि उत्पादकता विशेष रूप से औपचारिक क्षेत्र में बढ़ रही है लेकिन कम उत्पादक अनौपचारिक क्षेत्र में नवीन रोज़गार तैयार किए जा रहे हैं।

तालिका-2 में जीडीपी वृद्धि, भारत के लिए क्षेत्रों से रोज़गार वृद्धि और लोच पर अंक दिए गए हैं। प्राथमिक क्षेत्र के लिए रोज़गार वृद्धि और लोच में गिरावट आई है। कृषि में रोज़गार की हिस्सेदारी में गिरावट की ज़रूरत है। हालांकि, विनिर्माण क्षेत्र में भी गिरावट आ रही है।

विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार की लोच 1970 के दशक में 0.78 से 2000 के दशक में 0.25 की गिरावट आई है। इसी तरह, तृतीयक क्षेत्र की लोच इसी अवधि के दौरान 0.77 से 0.30 की गिरावट आई। पिछले दो दशकों में, निर्माण क्षेत्र, व्यापार, होटल, परिवहन और भंडारण में अधिक रोज़गार उत्पन्न हुए थे।

भारतीय अर्थव्यवस्था में दो अन्य महत्वपूर्ण रुझान माने जाते हैं। पहले में संगठित विनिर्माण क्षेत्र 'रोज़गार रहित आर्थिक वृद्धि' की घटना दिखती है। इस क्षेत्र में रोज़गार की वृद्धि दर में 1980 के दशक के बाद से लगातार नकारात्मक वृद्धि जो 1988/1994 में -0.8 की वृद्धि दर, 1994/2000 तथा 1999/2005 में क्रमशः -2.5, -5.9 और, 2005-2008 में -3.4 दर्ज की गई।

दूसरे, अतिरिक्त रोज़गार का उत्पन्न होना मुख्य रूप से अनौपचारिक श्रमिकों से संबंधित है। लगभग 630 लाख श्रमिकों को 1999-2000 से 2009-10 तक की अवधि के दौरान मिलाया गया। इनमें से 447 लाख श्रमिकों को असंगठित क्षेत्र में शामिल किया गया है तथा 188 लाख श्रमिक अनौपचारिक संगठित श्रमिक थे। दूसरे शब्दों में, उत्पन्न सभी अतिरिक्त रोज़गार अनौपचारिक प्रकृति के थे।

भारत में बड़ी संख्या में निर्धन श्रमिक हैं। लगभग 92 फीसदी श्रमिक निम्न उत्पादकता, कम आय, खराब स्थिति और सामाजिक सुरक्षा की कमी वाले असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। इस प्रकार भारतीय अनुभव से पता चलता है कि यहां के रोज़गारों में मात्रा और गुणवत्ता में विकास की ज़रूरत है।

वैश्विक अनुभव

वैश्विक रोज़गार रुझान 2013 (आईएलओ, 2013) की रिपोर्ट के मुताबिक, वैश्विक बेरोज़गारी 2007 में 1700 लाख से बढ़कर 2011 में 1970 लाख होने का अनुमान लगाया गया है। लगभग 390 लाख श्रमिकों ने श्रम बाज़ार को इसलिए छोड़ दिया क्योंकि उन्हें यहां रोज़गार की संभावनाएं नहीं दिखती हैं। जिन्हें 'हतोत्साहित श्रमिक' भी कहा जाता है। आईएलओ (2012 अ) इंगित करता है कि यद्यपि अर्थव्यवस्थाओं ने 2000 के दशक में उच्च आर्थिक वृद्धि दर हासिल की है परंतु रोज़गार लोच आर्थिक वृद्धि से कम रहा है। जनसंख्या और रोज़गार

तालिका 1. भारत में जीडीपी वृद्धि, रोज़गार, उत्पादकता और लोच

अवधि	जीडीपी वृद्धि (%)	रोज़गार वृद्धि (%)	उत्पादकता वृद्धि (%)	जीडिपी के संबंध में रोज़गार में लोच
1972.73 से 1983	4.66	2.44	2.22	0.52
1983 से 1993.94	4.98	2.02	2.96	0.41
1993.94 से 2004.05	6.27	1.84	4.43	0.29
1999.00 से 2009.10	7.52	1.50	6.02	0.20
2004.05 से 2009.10	9.08	0.22	8.86	0.02

स्रोत: *पपोला से व्युत्पन्न (2012)*

का अनुपात लगभग 60 फीसदी था जब वैश्विक अर्थव्यवस्था लगातार बढ़ रही थी।

यह रिपोर्ट कहती है कि वैश्विक स्तर पर जब, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर सफलताओं का मुखौटा हो सकता है तब वहां रोज़गार के आर्थिक वृद्धि का जवाब देने के लिए कुछ ऐसे सबूत होते हैं जो इसका जवाब देते हैं।

आईएलओ रिपोर्ट (2012 अ) में कहा गया है कि विकास में रोज़गार की प्रतिक्रिया न होने की कई वजहों में से एक कारण संरचनात्मक परिवर्तन हो सकता है जो वैश्विक अर्थव्यवस्था भुगत रही है। कुछ संरचनात्मक परिवर्तन हैं–(क) श्रम बचत तकनीकी विकास (ख) श्रमिक निम्न उत्पादकता अनौपचारिक क्षेत्र की ओर बढ़ रहे हैं (ग) पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करने में जलवायु परिवर्तन के खिलाफ लड़ने के लिए अर्थव्यवस्थाएं समायोजन का सामना कर रही हैं (घ) दोहन क्षेत्रों से कुछ मांग की जा रही हैं जिनमें निम्न रोज़गार तीव्रता है।

आईएलओ (2012 अ) का निष्कर्ष है कि (अ) रोज़गार के लिए विकास कोई आवश्यक शर्त नहीं है यद्यपि यह एक आवश्यक शर्त है और (ब) ऐसा नहीं लगता है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में रोज़गार उत्पादन संरचनात्मक परिवर्तनों के लिए संचालक है।

वैश्विक स्तर पर चुनौती है निर्धन श्रमिकों के लिए उत्पादक और सभ्य रोज़गार लाना, प्रत्येक वर्ष उन हतोत्साहित श्रमिकों को मिलाकर 2000 लाख में से 400 लाख श्रमिकों को श्रम बल में लगा दिया जाता है।

2. भारत में उत्पादक रोज़गार सृजन के लिए नीतियां और विकल्प

उत्पादक रोज़गार पैदा करने के लिए नीतियों का होना ज़रूरी है। अर्थव्यवस्था के सभी तीन क्षेत्र कृषि, उद्योग और सेवाए उत्पादक रोज़गार के विकास में योगदान दे सकते हैं यद्यपि गहन श्रम निर्माण सबसे महत्वपूर्ण है। कृषि विकास उत्पादक समावेश के लिए महत्वपूर्ण घटकों में से एक है।

फ़सल क्षेत्र में और अधिक श्रमिकों को नहीं रखा जा सकता लेकिन संबद्ध गतिविधियों और कृषि प्रसंस्करण आदि में कुछ बढ़ती श्रमशक्ति अवशोषित कर सकता है। वैश्विक अनुभव से प्रतीत होता है कि निर्धनता कम करने में कृषि क्षेत्र की सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर गैर-कृषि क्षेत्रों के जीडीपी वृद्धि से दोगुनी प्रभावी है। भारत में कृषि क्षेत्र में कुल कारक उत्पादकता (टीएफपी) के सूचकांक में 1961 में 100 से 2009 में 170 तक की वृद्धि हुई।

इसी अवधि में यह ब्राज़ील, चीन और इंडोनेशिया में 100 से 200 से भी अधिक की वृद्धि हुई। भारत में कई फसलों की पैदावार कई देशों की तुलना में कम है। इस प्रकार, भारत में टीएफपी और पैदावार में वृद्धि उचित क़ीमत और गैर-मूल्य नीतियों (प्रौद्योगिकी और विस्तार, जल-प्रबंधन, विपणन और ग्रामीण संरचना) के बहुत ज़्यादा अवसर हैं। कृषि के विविधीकरण , पूर्व और केंद्रीय क्षेत्रों पर नज़र, आपूर्तिशृंखला और संबंध के लिए कृषि प्रसंस्करण में बढ़ते उत्पादक रोज़गार बढ़ा सकती है। कृषि का उच्च विकास भी संयोजन के चलते गैर-कृषि ग्रामीण क्षेत्र को बढ़ाता है।

समय के साथ, पूर्व एशियाई अनुभव द्वारा यह दिखाया गया है कि हमें कृषि से श्रमिकों को श्रम समावेषी निर्माण में लेकर आने की ज़रूरत है। भारत में 2009 के दौरान विनिर्माण रोज़गार में 11 फ़ीसदी की हिस्सेदारी रही जबकि इस तुलना में पूर्व एशियाई देशों में यह 30 से 40 फीसदी है।

एक शोध पत्र रामास्वामी और अग्रवाल (2012) में 1999-2000 से वर्ष 2009-10 तक की अवधि के दौरान शहरी भारत में विनिर्माण और सेवाओं के रोज़गार और काम की गुणवत्ता की तुलना की गई है। इस पत्र के परिणामों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं–

''परिणाम दृढ़ता से सुझाव देता है कि रोज़गार चाहने वाले लाखों कम कुशल लोगों के लिए सेवा क्षेत्र एक अप्रत्याशित गंतव्य होगा। भारत में बड़े पैमाने पर रोज़गार उपलब्ध कराने के लिए विनिर्माण क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करने की ज़रूरत है। विनिर्माण क्षेत्र के पास क्षमता है क्योंकि यहां सेवा क्षेत्र के विपरीत मज़बूत पश्चगामी संपर्क हैं। हम विकास के इस स्तर पर विनिर्माण की उपेक्षा का वहन नहीं कर सकते हैं। नीति संकेत स्पष्ट रूप से कह रहे हैं कि एक बड़े पैमाने पर निर्माण गतिविधि का समर्थन करने के लिए खड़े होना है।'' एसएमई और असंगठित विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादक रोज़गार में वृद्धि के अलावा संगठित विनिर्माण क्षेत्र की श्रम तीव्रता को सुधारना होगा।

इसका मतलब यह नहीं है कि सेवा क्षेत्र में बढ़ रही श्रम शक्ति को मिलाने की क्षमता नहीं है। बल्कि, इचनग्रीन और गुप्ता (2011) ने एक अध्ययन में विनिर्माण और सेवाओं के बीच एक पूरक संबंध में सुझाव दिया है कि भारत में दोनों को एक बड़ी श्रमशक्ति को लगाने की आवश्यकता है। हालांकि, सेवा क्षेत्र अनौपचारिकता और वेतन असमानता के मामले में अधिक द्वंद्वात्मक है। एक तरफ, हमारे पास अत्यधिक कुशल आईटी जैसी

गतिविधियां हैं जिन्हें बहुत अधिक वेतन मिल रहा है। दूसरी ओर, हमारे पास कम उत्पादक, बड़े अनौपचारिक क्षेत्र हैं जो बहुत कम आय और मज़दूरी पा रहे हैं।

बेरोज़गारी देश की एक बड़ी समस्या है। युवाओं में विशेष तौर पर देखा जाए तो यह 15 से 20 फीसदी का आंकड़ा छूती है। लेकिन, रोज़गार की मुख्य चुनौती 'काम कर रहे निर्धन' की बड़ी संख्या है। इन कर्मचारियों में अधिकतर असंगठित क्षेत्र में हैं जो कुल श्रमिकों में से 92 फीसदी हैं। ये लोग बिना कम उत्पादकता और कम आय के साथ बिना किसी सामाजिक सुरक्षा के काम कर रहे हैं। यहां उनकी उत्पादकता और आय में वृद्धि के लिए एक आर्थिक तर्क भी है जो असंगठित क्षेत्र देश के सकल घरेलू उत्पाद का 50 फीसदी से अधिक योगदान देता है।

दृष्टिकोण पत्र 'जनसांख्यिकीय लाभांश' की विकास क्षमता को जोड़ने के क्रम में दो शर्तों को पूरा किए जाने पर ज़ोर डालता है। ''सबसे पहले स्वास्थ्य के उच्च स्तर, शिक्षा और कौशल विकास को हासिल किया जाना चाहिए। दूसरा, एक ऐसा वातावरण बनाया जाए जहां न केवल अर्थव्यवस्था तेज़ी से बढ़े बल्कि अच्छी गुणवत्ता वाले रोज़गार / आजीविका के अवसर हों जो युवाओं की ज़रूरतों और आकांक्षाओं को पूरा कर सकें।'' इस प्रकार, कौशल विकास और उत्तम रोज़गार की आवश्यकता के महत्व के लिए ही अच्छी तरह मान्य हो।

अंत में, सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों जैसे, मज़दूरी रोज़गार (मनरेगा) और स्वरोज़गार कार्यक्रम (राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन) योजनाओं पर बड़े खर्च किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों को उत्पादक रोज़गार उत्पन्न करने चाहिए। उदाहरण के लिए , मनरेगा को कृषि उत्पादकता में वृद्धि करनी चाहिए जो अतिरिक्त रोज़गार पैदा कर सकते हैं।

देश की 12 वीं पंचवर्षीय योजना के उद्देश्य 'तेज, टिकाऊ और अधिक समावेशी विकास' (स्वतंत्र रूप से किया है) को पाना है जो वैश्विक स्तर पर 2015-पद के विकास के एजेंडे वाले विचार के साथ पंक्ति में है।

भारत में ताजा परिप्रेक्ष्य में आर्थिक वृद्धि और रोज़गार मात्रा से गुणवत्ता और कौशल विकास से ध्यानकेंद्र के स्थानांतरण से संबंधित है। यह ध्यानकेंद्र श्रम गहन विनिर्माण क्षेत्र पर भी है जिससे कि श्रमिकों को कृषि से उच्च उत्पादकता के क्षेत्रों में स्थानांतरित किया जा सकता है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए सुरक्षा और श्रमिकों की उत्पादकता में सुधार लाने पर भी ज़ोर दिया जाता है। हालांकि, कर्मचारियों के लिए तीव्र कौशल विकास और समावेशी विकास को प्राप्त करने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। यह भारत में जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ लेने के लिए भी महत्वपूर्ण है।

3. उत्पादक रोज़गार सृजन और उच्च विकास एवं समग्रता के लिए पांच बातों पर ध्यान देने की ज़रूरत

भारत ने पिछले 22 वर्षों में विशेष रूप से मैक्रो प्रदर्शन की सुधार अवधि में बहुत कुछ हासिल किया है। विकास और मुद्रास्फीति के मोर्चे पर, देश ने वैश्विक वित्तीय संकट तक में अच्छा प्रदर्शन किया है। हमारे सामने कई लघु अवधि की स्थूल समस्याएं हैं: निवेश और वृद्धि में गिरावट, उच्च मुद्रास्फीति, दोहरा अवमूल्यन, कम निर्यात, रुपया अवमूल्य आदि। भारत को जल्दी अल्पावधि समस्याओं से बाहर आकर टिकाऊ विकास के लिए लंबी अवधि के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। उच्चतम और समावेशी विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है। ज़ाहिर तौर पर सवाल उठता है आगे क्या?

तालिका 2. भारत में क्षेत्रों के द्वारा जीडीपी वृद्धि, रोज़गार और लोच

क्षेत्र	जीडीपी वृद्धि (%)				रोज़गार वृद्धि (%)				जीडीपी के संबंध में रोज़गार में लोच			
	72.73 जव 83	83 जव 93/94	93.94 जव 04.05	99. 00/09. 10	72.73 जव 83	83 जव 93/94	93.94 जव 04.05	99. 00/09. 10	72.73 जव 83	83 जव 93/94	93.94 जव 04.05	99. 00/09. 10
प्राथमिक क्षेत्र	3.66	2.76	2.51	2.33	1.70	1.35	0.67	.0.13	0.46	0.49	0.26	.0.05
विनिर्माण	5.47	4.94	6.70	7.97	4.28	2.00	3.17	1.95	0.78	0.41	0.47	0.25
निर्माण	3.08	4.88	7.63	9.20	4.43	5.67	7.19	9.72	1.44	1.16	0.94	1.06
माध्यमिक क्षेत्र	5.09	5.35	6.68	7.78	4.43	2.82	3.97	4.64	0.87	0.53	0.59	0.60
व्यापार, होटल आदि	5.74	5.58	8.64	8.47	4.62	3.77	5.24	2.54	0.81	0.67	0.61	0.30
परिवहन एवं संचार	6.48	6.03	10.57	14.50	5.88	3.39	5.16	3.68	0.91	0.56	0.49	0.25
वाणिज्यिक, बीमा आदि	5.95	9.07	7.29	9.47	7.43	3.58	7.23	7.68	1.25	0.39	0.99	0.81
सामुदायिक सामाजिक आदि	4.49	5.86	6.53	6.58	3.18	3.91	0.40	1.85	0.71	0.67	0.06	0.28
तृतीयक क्षेत्र	5.46	6.58	8.00	9.35	4.21	3.77	3.41	2.83	0.77	0.57	0.43	0.30
सभी गैर-कृषि	5.31	6.12	7.54	8.84	4.30	3.36	3.64	3.61	0.81	0.55	0.48	0.41
कुल	4.66	4.98	6.27	7.52	2.44	2.02	1.84	1.50	0.52	0.41	0.29	0.20

स्रोत: पपोला से व्युत्पन्न (2012)

मेरे हिसाब से सुधार के बाद की अवधि में पांच निराशाएं हैं। ये उच्च विकास और समग्रता को प्राप्त करने, उत्पादक रोज़गार सृजन के लिए महत्वपूर्ण है। इन्हें नीचे विस्तार से दिया गया है–

सबसे पहले धीमी गति से बुनियादी ढांचे का विकास पहली निराशा है। यद्यपि यहां बहुत प्रगति है, सभी संकेत तुच्छ दिखते हैं जब कोई अन्य देश विशेष तौर पर चीन जैसे देश से भारतीय ढांचे की तुलना करता है। उदाहरण के लिए, बिजली की कमी भारत में बारहमासी है। यह हमारे विकास के लिए एक सबसे बड़ी बाधाओं में से एक है। हालांकि, यह 11 वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान सकारात्मक ही है। वहीं, 12वीं योजना में अनुमानित एक लाख करोड़ डॉलर में से 47 फीसदी निवेश निजी क्षेत्र से होने की उम्मीद है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि राज्यों में बुनियादी सुविधाओं का सूचकांक, प्रति व्यक्ति आय और ग़रीबी के स्तर से अत्यधिक मेल खाता है। भारत पर आइएफपीआरआई के अध्ययन से पता चलता है कि सड़कों पर सार्वजनिक व्यय ग़रीबी विरोधी कार्यक्रमों की तुलना में ग़रीबी पर बेहतर प्रभाव पड़ता है।

दूसरी निराशा श्रम गहन विनिर्माण जुटाने में नाकामी है। सुधार के बाद की अवधि में कुल रोज़गार में विनिर्माण के शेयर 11 से 12 फीसदी पर लगभग स्थिर रहे। साल 2010 में, भारत के विनिर्माण की वैश्विक निर्यात में 1.4 फीसदी की हिस्सेदारी रही जबकि चीन की 15 फीसदी की बहुत बड़ी हिस्सेदारी है। सन् 1991 के सुधारों के बाद पूंजी और कौशल गहन उद्योगों के प्रति पूर्वाग्रह को दूर करने के लिए पर्याप्त बचाव नहीं किया गया। इसके अलावा भूमि और श्रम की तरह निवेश बाज़ारों में विकृतियां रही हैं। एसएमई और असंगठित क्षेत्र के निर्माण की उत्पादकता में इजाफा हुआ है।

संरचनात्मक परिवर्तन में कृषि की भूमिका उत्पादकता में वृद्धि के माध्यम से नहीं है लेकिन बढ़ते जा रहे रोज़गार के माध्यम से है। कृषि क्षेत्र में कम उत्पादकता विकास, निराशा में से एक है। सेवाएं तथा विनिर्माण पूरक भूमिका निभाते हैं।

तीसरी निराशा श्रमिकों की शिक्षा और कौशल के स्तर में धीमी प्रगति है। जनसांख्यिकीय लाभांश का लाभ न लेने वाली विफलताओं में से एक है। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के 12वीं योजना के संबंध में उद्धरण, युवा आबादी एक परिसंपत्ति है यदि यह शिक्षित, कुशल और उत्पादक रोज़गार पाता है। यहां तक कि 2009-10 में कुल श्रमिकों के लगभग 52 फीसदी या तो निरक्षर हैं या केवल प्राथमिक स्तर तक शिक्षित हो पाए हैं। कुल मिलाकर 15-59 वर्ष की आयु वर्ग में श्रमिकों की संख्या के 10 फीसदी ने व्यावसायिक प्रशिक्षण के कुछ फार्म प्राप्त किए हैं। श्रमिकों के विशाल बहुमत ने अनौपचारिक व्यावसायिक प्रशिक्षण लिया है। आबादी और श्रमिकों में शिक्षा के स्तर एवं कौशल को ऊपर उठाने में बड़ी चुनौतियां हैं।

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि राज्यों में बुनियादी सुविधाओं का सूचकांक, प्रति व्यक्ति आय और ग़रीबी के स्तर से अत्यधिक मेल खाता है। भारत पर आइएफपीआरआई के अध्ययन से पता चलता है कि सड़कों पर सार्वजनिक व्यय ग़रीबी विरोधी कार्यक्रमों की तुलना में ग़रीबी पर बेहतर प्रभाव पड़ता है।

चौथी निराशा सामाजिक क्षेत्र का धीमा विकास है। हालांकि, सुधार अवधि के दौरान सामाजिक क्षेत्र में उपलब्धियां भी हैं लेकिन प्रगति बहुत धीमी रही है। यदि हम वर्ष 1993-94 और 2009-10 की लंबी अवधि में तुलना करें तो, भारत के लिए ग़रीबी में गिरावट की दर प्रतिवर्ष 0.97 फीसदी के करीब रही है (असमानता में वृद्धि हुई) अनुसूचित जनजातियों के लिए ग़रीबी में कमी आई। वर्ष 2004-05 से 2009-10 की हालिया छोटी अवधि में सुधार दिखाई दिया है: ग़रीबी में प्रतिवर्ष 1.5 गिरावट की दर से तेजी आई है, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में ग़रीबी की गिरावट दर सभी तुलना में अधिक है, असमानता में ग्रामीण क्षेत्रों में थोड़ी गिरावट आई है, लेकिन शहरी क्षेत्रों में वृद्धि हुई है।

हालांकि, एक लंबी अवधि में एक सब इन संकेतकों से बहुत अधिक प्रगति की आशा है। भारत, आर्थिक वृद्धि में सफल हो चुकी है लेकिन सामाजिक संकेतकों या पर्यावरण सहित एमडीजी के विकास लक्ष्यों की प्रगति में विफल है। हम चीन के पीछे ही नहीं हैं, बल्कि प्रगति की तुलना में हम बांग्लादेश से धीमे हैं। साल 2012-13 में प्रकाशित हुई, इंडिया डेवलपमेंट रिपोर्ट में अनुमानित असमानता समायोजित मानव विकास सूचकांक का अध्ययन किया गया।

रिपोर्ट में बताया गया है कि मानव विकास सूचकांक असमानता की लागत 32 फीसदी है। असमानता के कारण हुए नुक़सान से शिक्षा के आयाम में अत्यधिक है (43 फीसदी) और उसके बाद स्वास्थ्य (34 फीसदी), और आय में (16 फीसदी)। गुजरात और केरल में मानव विकास की प्रगति के बारे में एक बहस जारी है। गुजरात में सुधार किया गया है लेकिन मानव विकास में बढ़ोतरी के लिए इसे एक लंबा सफर तय करना है।

अंतिम और पांचवीं निराशा शासन की विफलता है। विभिन्न स्तरों पर सुधार के लिए शासन में सुधार की उम्मीद कर रहे थे। हालांकि, शासन में भ्रष्टाचार सहित पुरानी समस्याओं के विरोध में नयी समस्याएं खड़ी हैं। कर्नाटक के लोकायुक्त के प्रदर्शन पर प्रकाशित एक अध्ययन इंडिया डेवलपमेंट रिपोर्ट 2012-13 सुझाव देती है कि पूरी तरह से जांचे बिना देश के प्रशासनिक ढांचे, भ्रष्टाचार का पूर्व प्रभावी अभियोजन पक्ष या आर्थिक गतिविधियों से वापसी भ्रष्टाचार को कम नहीं कर सकते हैं। वर्तमान में भ्रष्टाचार विरोधी लोकपाल के प्रारूप लोकायुक्त के व्यक्तित्व में बहुत कुछ छोड़ देता है। विश्लेषण से यह भी पता चलता है कि कानूनी प्रणाली में अत्यधिक बोझ की बजाये उनमें कानूनी सुधारों की ज़रूरत है। डॉ. बिमल जालान और कई अन्य लोगों का मानना है कि शासन समस्या देश को अपने विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में सबसे बड़ी बाधा है। इस समस्या को हल करना उपर्युक्त चार मुद्दों की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि समावेशी विकास का अर्थ कुछ सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों के होने या जनसंख्या के कुछ वर्गों के लिए मुक्त होना नहीं है। ऐसे में उत्पादक या गुणवत्ता रोज़गार सृजन का उत्पादक समावेश होना चाहिए। ❑

(निदेशक एवं कुलपति, आईजीआईडीआर, मुंबई
ई-मेल : profmahendra@igidr.ac.in)

आर्थिक वृद्धि और न्यायपूर्ण जन-समावेशन

● कमल नयन काबरा

सन् 2013 का उत्तरार्द्ध भारत और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अनेक गंभीर, तात्कालिक और दीर्घकालिक सवाल और चुनौतियां पेश कर रहा है। इन सब पर गंभीर चिंतन और खरे टकसाली आत्मावलोकन की ज़रूरत है। सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर की गिरावट इस संकट की सही तस्वीर दिखा सकती है। ज़रूरत है इसके भीतर, इसके पीछे और आगे के सभी पक्षों की ओर झांकने, उन्हें खंगालने की लगातार बढ़ती हुई प्रवृत्ति। सच है कि विदेशी आर्थिक संबंध, राजकोषीय स्थिति देश की आंतरिक क़ीमतों की लगातार बढ़ती हुई प्रवृति भारतीय मुद्रा की अमरीकी डॉलर तथा अन्य प्रमुख करेंसियों से तेज़ी से गिरती विनिमय दर आदि संपन्न लोगों, कंपनियों के नियंत्रकों, स्वयं राजकीय नीति-निर्माताओं, वित्तीय-आर्थिक मीडिया तथा अन्य अभिजात तबकों तक की नींद उड़ा रहे हैं। आम आदमी पर तो इनका काला साया घना हो ही रहा है। हमारे विदेशी लेन देन का चालू या वर्तमान घाटा क्रमशः राष्ट्रीय आय के 4.8 प्रतिशत तथा और राजकोषीय घाटा (7.53 प्रतिशत) रुपये की उपभोक्ताओं के लिए क्रय शक्ति का इन दिनों मात्र 19 पैसे रह जाना, आदि आंकड़े स्वाभाविक रूप से चर्चा और चिंता के विषय बन चुके हैं। निश्चित रूप से ये एक चिंतनीय और चिंतनकारी चुनौती दर्शाते हैं। वादों, घोषणाओं, आगत के अनुमानों आदि में भी आशा-संचारक तत्वों का काफी अभाव है। अब शायद ही कोई इस स्थिति को एक संकटकालीन स्थिति बताने में हिचकिचाए, चाहे इसका दोष बाहरी अथवा आंतरिक कारकों, कारणों पर डालने में मतभेद हों। चाहे सन् 1991 की पुनरावृत्ति हो या कुछ और ज़्यादा गहरा मसला। वैसे भारत ने भूमंडलीकरण के मैदान में इन बाईस वर्षों में ऊंची और लंबी छलांग लगाई है। आंतरिक और बाहरी कारणों, प्रभावों, प्रक्रियाओं और नीतियों के बीच अब किसी गहरी खाई की परिकल्पना या अर्थहीन या सोची-समझी भरमाऊ राजनीति, नीतियां चालबाजी मानी जा सकती है।

हम चालू खाते को पाटने की तजबीज नहीं कर पाए हैं और पूंजी खाते में बाहरी पूंजी लाने की भारी क़ीमत छोटे व्यापारियों तक को डिस्प्रेसमेंट निवेश के निशाने पर बैठा रहे हैं। एफडीआई रोज़गारनाशक और विदेशी मुद्रा की कमी बढ़ाने वाला साबित हो रहा है ना कि निर्यातवर्द्धक।

याद कीजिए 1980 के दशक के शुरू में हमारा सारा विदेशी व्यापार सकल राष्ट्रीय आम के 10 प्रतिशत से थोड़ा ही ऊपर था। अस्सी के दशक में नियंत्रणों में कुछ ढील दी गई। फिर भी हमारा विदेशी व्यापार राष्ट्रीय आय अनुपात मुश्किल से तेरह प्रतिशत का अंक छू पाया। सन् 2000 तक भी विदेशी व्यापार हमारी अर्थव्यवस्था के पांचवें हिस्से के इर्द-गिर्द ही रहा। इसके बाद आर्थिक वित्तीय खुलेपन का बवंडर तेज़ी पकड़ने लगा। अब सन् 2012-13 की राजकीय आर्थिक समीक्षा के अनुसार विदेशी व्यापार का आकार सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 55 प्रतिशत का अंक छू रहा है। इस परिवर्तन के अर्थ और परिणाम समझने ज़रूरी हैं। किंतु हम चालू खाते को पाटने की तजबीज नहीं कर पाए हैं और पूंजी खाते में बाहरी पूंजी लाने की भारी क़ीमत छोटे व्यापारियों तक को डिस्प्रेसमेंट यानी (प्रतिस्थापक) निवेश के निशाने पर बैठा रहे हैं। एफडीआई रोज़गारनाशक और विदेशी मुद्रा की कमी बढ़ाने वाला साबित हो रहा है ना कि निर्यातवर्द्धक। ख़ास तौर पर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि हमारी राष्ट्रीय आय में वस्तु उत्पादन क्षेत्रों में (खेती, उद्योग-धंधों आदि) का अनुपात महज 40 प्रतिशत से कम हो गया है और तृतीयक यानी वस्तुएं, सेवाओं के क्षेत्रक का अनुपात 60 प्रतिशत के ऊपर पहुंचा है। वैसे भारत सेवाओं के क्षेत्र से भी काफी अनुपात में निर्यातक हैं। यह क्षेत्रक और वित्त, व्यापारिक सेवाएं आदि भी शेष संसार से गहराई से जुड़ते जा रहे हैं। सेवाओं के उत्पादन की प्रमुखता हमारी अर्थव्यवस्था के चरित्र और संरचना की ज़रूरतों के प्रतिकूल है। हमारे राष्ट्रीय ख़र्च या पारिवारिक बजट में वस्तुओं की प्रमुख और सेवाएं गौण हैं। एक पैनी समझ-बूझ वाले अर्थशास्त्री ने सेवाओं के उत्पादन को आधी सच्चाई और आधा अफ़साना बताया है। हम कुछ और तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे। इससे हमारी अर्थव्यवस्था के वर्तमान मुकाम पर पहुंचने के रास्तों का शायद कुछ खुलासा हो पाए। भारत अनाज में मोटा-मोटी स्वावलंबी हो चुका है। किंतु खेतीबाड़ी के संचालन में खाद, बीज, डीजल, कीटनाशकों आदि के आयातों की भूमिका बढ़ी है। विदेशी व्यापार में मुख्य भूमिका विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) क्षेत्रक की रहती आई है। इस क्षेत्र के आयात 1970-71 में राष्ट्रीय आय के 18.76 प्रतिशत की और निर्यात 14.13 प्रतिशत। यानी मैन्युफैक्चरिंग का खुद का अपना व्यापार घाटा 4.63 प्रतिशत था। सन् 2010-11 तक के पूरे वर्ष के आंकड़ें दिखाते हैं कि यह मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र का व्यापार घाटा 32.92 प्रतिशत हो गया। इस बात को इस तरह भी देखा जा सकता है कि मैन्युफैक्चरिंग आयात इसी क्षेत्रक की राष्ट्रीय आय के अनुपात में लगातार बढ़ते गए हैं। 1970-71 के 14.13 प्रतिशत से 1990-91 में 38.80 प्रतिशत से 2008-09 के 115.52 (यानी देसी उत्पादन से ज़्यादा

विनिर्मित सामान) और सन् 2010-11 में 89.33 प्रतिशत। इसी दौरान कृषि का रा.आ. में सापेक्षिक योगदान घटते-घटते यानी रा.आ. के पांचवें-छठे हिस्से के इर्द-गिर्द आ गया। ज़ाहिर है विनिर्माण क्षेत्रक में आयात का बढ़ता हिस्सा हमारे बाज़ार का मुख्य आपूर्तिकर्ता बन गया। इस क्षेत्र की आंतरिक वृद्धि के रास्ते में वहन आयात प्रसार एक बड़ी रुकावट बन गया। फलतः द्वितीयक क्षेत्र की आय और रोज़गार वृद्धि सीमित और अपर्याप्त रही।

इस तरह के भूमंडलीकरण के चरित्र को हमारे व्यापार घाटे, चालू खाते तथा पूंजी खाते के परिप्रेक्ष्य में बेहतर समझा जा सकता है। हां, अदृश्यमान मदों के मामले में स्थिति में कुछ भिन्नता ज़रूर नज़र आती है। पहली योजना के पांच वर्षों के दौरान हमारा औसत सालाना व्यापार घाटा (सकल राष्ट्रीय आय) के एक प्रतिशत से कुछ कम था। दूसरी योजना के दौरान यह घाटा लगभग 3 प्रतिशत तक आ गया। लगभग ऐसी ही स्थिति सन् 1979-80 तक बनी रही। याद रहे यह वक़्त मुक्त व्यापार की नीतियों का नहीं, अपितु सार्वजनिक नीतियों द्वारा नियंत्रित नियमित विदेशी व्यापार का था। किंतु दो बार कुछ सालों के अंतराल में पेट्रोलियम पदार्थों आयात के दामों में भारी उछाल आए आयातों के चलते सन् 1980-81 में हमारा व्यापार घाटा 4.15 प्रतिशत तक बढ़ गया। 1990-91 के बाद भी 2004-05 में पहली बार इस घाटे ने 4 प्रतिशत की देहरी लांघी और 4.68 पर आ पहुंची। इसके बाद इस घाटे ने कुलांचे भरी और सन् 2011-12 में 10.30 प्रतिशत का रिकॉर्ड बनाया। किस तरह विनिर्माण क्षेत्र के राष्ट्रीय उत्पादन की मात्रा के मुक़ाबले हमने आयातित माल का अनुपात बढ़ाया यह हम देख चुके हैं। साफ-साफ नज़र आता है कि हमारे विदेशी व्यापार अनुपात में वृद्धि के साथ हमारा हमेशा बढ़ता व्यापार घाटा दहाई के अंक में सन् 2011-12 में आ गया। इस दौरान भारत के वित्तीय क्षेत्र में भी चालू खाते में तथा आंशिक रूप से पूंजीगत खाते में भी मुक्त द्वार नीतियां शुरू की गईं। भारतीय कंपनियों को बिना अपनी क्षमताओं द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित किए अपनी नेट वर्थ से चार गुणा तक विदेशों में निवेश करने की छूट दी गई है। इसके चलते भारत में आई एफडीआई का लगभग दो-तिहाई हमारी कंपनियों ने बाहर भेज दिया। कुल मिलाकर इन आवश्यक स्वावलंबी व्यापारिक तथा वित्तीय क्षमताएं अर्जित और पुख्ता किए बगैर हमने भूमंडलीकरण के झूले पर पैंगे मारना शुरू कर दिया। सोने-चांदी का अयात खोलकर तस्करी का निवारण और भारतीयों को विदेशों में मकान ख़रीदने की आज़ादी के साथ ही बहुत कम सीमा-शुल्क पर आयात की छूट ने हमें विदेशी पूंजी और वित्त को अपनी भूमंडलीकरण की नैय्या की पतवार बनाना पड़ा। हमारा लगभग 300 मिलियन डॉलर का विदेशी मुद्रा भंडार स्व-अर्जित विदेशी मुद्रा नहीं, बल्कि उधार, निवेश तथा भारतीय श्रमिकों की बचत के आधार पर बनाया गया। इन स्रोतों की अस्थिरता जगज़ाहिर है और इनकी लागत भी देश पर भारी पड़ती है। ख़ास तौर पर इसका अमरीकी सरकारी बॉडों में अलाभकारी निवेश करने। नतीज़े सबके सामने हैं। हमारी आंतरिक बचत और आंतरिक पूंजी निवेश दर के बीच का घाटा तथा चालू खाते का घाटा इसे विदेशी पूंजीगत खाते के तहत प्राप्त विदेशी कर्जों, निवेश आदि द्वारा प्राप्त करना पड़ता है। इस सदी के पहले दशक में हमारी निवेश दर राष्ट्रीय आम के 38 प्रतिशत की उच्च दर (2007-08 में) और 24.2 प्रतिशत (2000-01) के बीच घटती बढ़ती रही। साथ में हमारी बचत दर लगभग 24 प्रतिशत से 30 प्रतिशत के बीच बढ़ती-घटती देखी गई। ज़ाहिर है निवेश-बचत के बीच का अंतर बाहरी निवेश के द्वारा पूरा हुआ। साथ में एफडीआई को विदेशियों द्वारा किसी कंपनी के 10 प्रतिशत से ज़्यादा ख़रीदने के रूप में मान लेने के कारण उसके और पोर्टफोलियों यानी सीधे-सीधे शेयर बाज़ार के निवेश के बीच का अंतर धुंधला और कम हो गया। इस तरह की पूंजी की अस्थिरता या चंचलता ''पुरुष परातन की वधू'' की भांति अपनी चंचलता या भगोड़ेपन के लिए जानी जाती है।

उपर्युक्त तथ्य यह दिखाते हैं कि हमारी आर्थिक वृद्धि के आधार स्तंभ के रूप में मुक्त द्वार आर्थिक-व्यापारिक-वित्तीय नीतियों के कई तरह के मिले-जुले असर हुए। निवेश और वृद्धि-दर के संबंध के अलावा वृद्धि दर में विभिन्न क्षेत्रकों के अनुपात और वृद्धि-दर तथा नये रोज़गार अवसरों के निर्माण भी इन मुक्त द्वार भूमंडलीकरण से काफी नकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं। कुछ बातें स्पष्ट हैं। उन पर गौर करके ही भारत में आर्थिक वृद्धि-दर, उसकी संरचना अपवाद चरित्र और उसके प्रभावों का जायजा लिया जा सकता है। त्रासदी यह है कि हमने राष्ट्रीय आम वृद्धि को उसके स्वरूप और लागत, उसके वितरण तथा पर्यावरण पर प्रभाव की अनदेखी करते हुए अपने आय में परिपूर्ण चरम राष्ट्रीय लक्ष्य मान लिया है। यह एक अर्थ में गंभीर भूल और सैद्धांतिक-व्यापारिक कट्टरवाद का उदाहरण है।

भारत एक विशाल, विविधतामय, अति ग़रीब तबकों की बड़ी भारी संख्या (जिनके उपभोग में खाद्य तेल और दालों की नाममात्र मात्रा के अतिरिक्त आमतौर पर आयातित माल के लिए कोई स्थान नहीं होता है।) तथा गहन और वृद्धिमान विषमताओं वाला देश है। इसमें राष्ट्रीय आय के आधे से ज़्यादा बड़े विदेशी व्यापार और इसके अतिरिक्त लगातार बढ़ते वित्तीय संबंधों के औचित्य, भूमिका और तात्कालिक तथा दीर्घकालिक फलितार्थों पर विचार करना ज़रूरी है। रुपये की बाहरी क़ीमत में गिरावट के कारण गंभीर, दूरगामी नुक़सानों की कोई भरपाई संभव नहीं है। अपने बेचे गए माल की कम क़ीमत और ख़रीदे माल की ऊंची क़ीमत हमारे घाटे के सौदों का दूसरा नाम है। इसे निर्यात-वृद्धि का साधन मानना मुद्रा को वास्तविक साजो-सम्मान और मानवीय ज़रूरतों से ज़्यादा 'महत्व देना होता है। सन् 1991-92 के मुक़ाबले आज रुपये की एक-तिहाई क़ीमत इस भूली-बिसरी स्थिति की दास्तान बयां करते हैं। रुपये की बाहरी और आंतरिक दोनों स्तरों पर गिरावट एक गंभीर परिघटना है। हमारे पास अपनी खुद की अर्जित विदेशी मुद्रा के बूते पर इस भूमंडलीकरण की गाड़ी को चलाने और गति देने की स्वायत्त क्षमता आज तक उत्पन्न नहीं हो पाई है। सन् 1991 के बाद सब तरह के आयातों, तकनीक, प्रबंधन, विदेशी कंपनियों द्वारा प्रत्यक्ष निवेश, भारतीय निर्यात को जबरदस्त प्रोत्साहन, वित्तीय क्षेत्र का रुपये की आंशिक परिवर्तनीयता के दायरे में अधिकतम खोला जाना भारत में मनी लांडरिंग तथा विदेशों से चोरी-छिपे संबंधों का फलता-फूलता काला कारोबार आदि एक जटिल स्थिति पैदा करते हैं। इसमें भारतीयों द्वारा विदेश यात्रा शिक्षा

आदि पर ख़र्च में सन् 1991 के बाद आई दर्जनों गुणा बढ़ोतरी हमारे विदेशी लेनदेन की स्वतंत्र, स्व-अर्जित क्षमता को दीर्घकालिक विशाल कमजोरी और अभाव की खाज़ में कोढ़ का कार्य कर रहे हैं। सोने-चांदी, विभिन्न किस्म के निजी मोटरवाहनों, महंगे, विलासिता में राजाओं के महलों की रंगत फीके करते बंगले और बहुमंजिले महल हमारे आयात को बढ़ाते हैं। ख़ासकर इस ख़र्च में काले धन की प्रचुरता के चलते। जब तक गैर-बराबरी, काले धन और याराना पूंजीवाद का बोलबाला रहेगा, सोने-चांदी का आयात या उनकी तस्करी कम नहीं हो सकते। दूसरी ओर रोज़गार, संगठित क्षेत्र में रोज़गार (जिसे 2012-13 की वित्त मंत्रालय की आर्थिक समीक्षा 'समावेशन' का सर्वोत्तम साधन मानती है।) के अभाव तथा ज़िंदगी की गाड़ी का येन-केन-प्रकारेण खींचते रहने देने में सहायक अनौपचारिक रोज़गारों का कृषि के बाहर भी 70 प्रतिशत हिस्सा, साथ में लगातार बढ़ती महंगाई हमारे कल-कारखानों को बढ़ाने के लिए मांग-पक्ष का दबाव या प्रेरणा उत्पन्न नहीं कर पाते हैं। कृषि की उपेक्षा, कृषि में ज़मीन का घटता रकबा तथा किसानों की ग़रीबी भी वृद्धि-दर में हमारी श्रम-शक्ति के सबसे विशाल क्षेत्र के योगदान पर अंकुश लगाते हैं। अतः हमारी आर्थिक वृद्धि दर अस्थिर है, अपर्याप्त है, रोज़गार वृद्धि कारक नहीं हैं और शेष अर्थव्यवस्था को बल नहीं दे पाती है।

इस परिप्रेक्ष्य में बढ़त दर 4.8 प्रतिशत हो जाने पर भी, तुलनात्मक स्तर तथा हमारे और अन्य देशों के लंबे अनुभव के आधार पर ठीक-ठाक बनी रही किंतु यह एक भ्रामक तथा कभी-कभार खास परिस्थितियों में हानिप्रद सौदा भी साबित हो सकता है। आम आदमी के लिए उसकी जीवनशैली, मूल्यों, पसंद-नापसंद और कम क्षमता के अनुकूल, उसे पुख्ता, पर्याप्त आमदनी देने वाला, रोज़गार देने वाला, उसके स्थानीय संसाधनों का प्राथमिकता से इस्तेमाल करने वाला, साजो-सामान और निजी, सार्वजनिक तथा अर्द्ध-सार्वजनिक सेवाओं का पर्याप्त और प्रचुर उत्पादन बढ़ता है तो यह टिकाऊ, तेज़ उपयुक्त आर्थिक वृद्धि का जनक होगा। ऐसी वृद्धि विकासधर्मी होगी, कुविकास- निवारक। इसमें पर्यावरण संरक्षण होगा और विदेशी आर्थिक संबंध जन-दृष्टिकोण से दीर्घकालिक लाभ के सबब होंगे। पिछले 22 वर्षों की लंबी यात्रा ने हमें जिस मुकाम, जिस परिस्थिति और पेचीदगी में डाला है, जिसे सरकारी, गैर-सरकारी सभी स्तरों पर एक अति-कठिन चुनौती भरी स्थिति माना जाता है, उससे निजात पाने के लिए वैचारिक, सैद्धांतिक निहित स्वाधीन पक्षधारिता से ऊपर उठना होगा। अनुभव और सिद्धांत दोनों दिखाते हैं कि बहुजनपक्षीय नीतियां और कार्यक्रम ऐसी ऊंची आर्थिक वृद्धि के सम्बल बनेंगे जो कालांतर में आर्थिक वृद्धि और समग्र विकास के बीच की खाई को पाट देंगे। वह वृद्धि न्यायपूर्ण समावेशी विकास का पर्याय बन जाएगी।

स्पष्ट है आर्थिक वृद्धि की महत्ता बढ़ा-चढ़ाकर नहीं आंकी जा सकती है। असली मुद्दा वृद्धि के निर्विवाद महत्व का नहीं है। प्रश्न है वृद्धि द्वारा रोज़गार, कीमत स्थायित्व, विदेशी व्यापार और भुगतान संतुलन, क्षेत्रकों और प्रदेशों के बीच संतुलित संबंध आदि प्राप्त किए जाएं। उसके परिणामस्वरूप अथवा इस प्रकार के स्वरूप और संतुलित विकास को पूर्व शर्त की तरह सुनिश्चित करके उसके फलस्वरूप आर्थिक संवृद्धि को त्वरित और टिकाऊ बनाया जाए। पहले विकल्प के नतीजे अनिश्चित देखे गए हैं और दूसरे के तयशुदा हैं, वृद्धि-दर की गति दूसरे विकल्प में ज़्यादा हो ज़रूरी नहीं है। किंतु उसकी गुणवत्ता और सातत्य सुनिश्चित हैं। ❑

(लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री और इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली में माल्कम आदिशेषैय्या चेयर प्रोफेसर हैं।

ई-मेल : kamalnkabra@yahoo.co.in)

योजना अब फेसबुक पर

आपकी लोकप्रिय पत्रिका **'योजना'** अब फेसबुक पर **Yojana Journal** नाम से पृष्ठ के साथ मौजूद है। हमारे फेसबुक पृष्ठ पर आएं और हमारी गतिविधियों तथा आगामी अंकों के बारे में ताज़ी जानकारी प्राप्त करें।

योजना के फेसबुक पेज की शुरुआत से लगभग चार माह की छोटी-सी अवधि में इसे 10000 से ज्यादा LIKES के लिए पाठकों का धन्यवाद।

हमारा पता : http://www.facebook.com/pages/Yojana-Journal/181785378644304?ref-hl

फेसबुक पर हमसे मिलें, Like करें और अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराएं।

सभी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए संशोधित एवं अद्यतन पुस्तक

प्रमुख आकर्षण

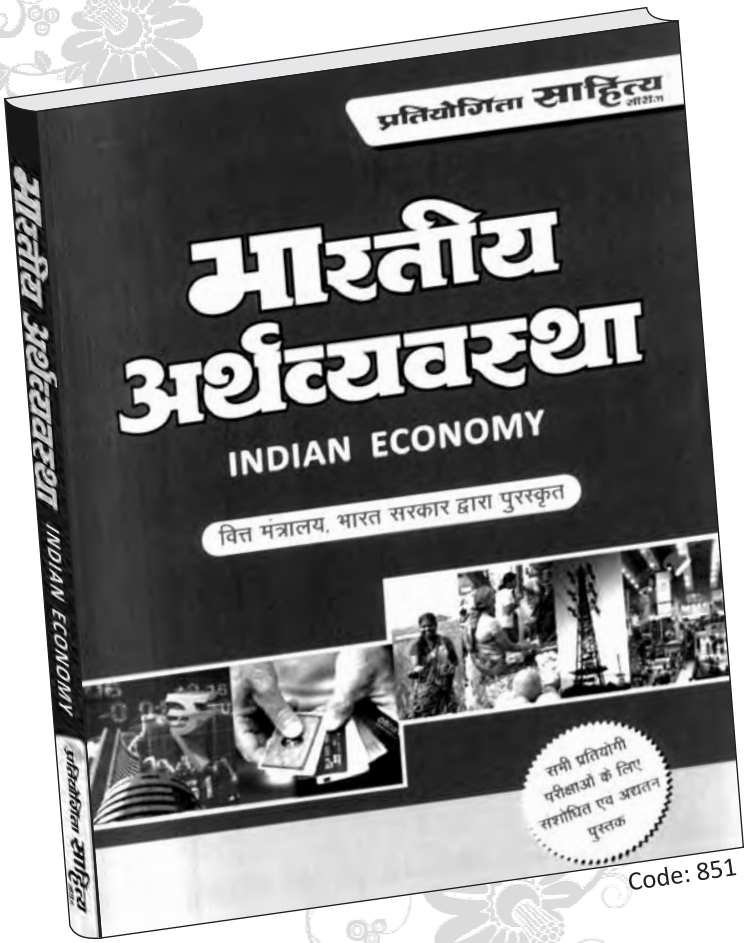

- विश्व विकास रिपोर्ट 2012
- विश्व विकास संकेतांक 2012
- मानव विकास रिपोर्ट–संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम 2013
- भारत 2013 के आधार पर समंक एवं विषय सामग्री
- भारतीय मानव विकास रिपोर्ट 2011
- बारहवीं (2012-2017) पंचवर्षीय योजना
- केन्द्रीय बजट 2013-14
- रेलवे बजट 2013-14
- आर्थिक समीक्षा 2012-13
- राष्ट्रीय विनिर्माण नीति 2011
- भारतीय कृषि की स्थिति 2011-12 रिपोर्ट के समंक
- विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयों की 2011-12 रिपोर्ट के आधार पर समंक
- जनगणना 2011 के विस्तृत समंक
- विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण के 2011-12 तक के समंक
- पंचवर्षीय विदेश व्यापार नीति 2009-2014
- मौद्रिक नीति 2012-13
- भारतीय वन स्थिति रिपोर्ट 2011
- भारतीय कृषि में क्षेत्र एवं उत्पादन के 2011-12 तक के समंक
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, यूरोपियन संघ, आसियान, सार्क इत्यादि अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में 2011-12 तक के समंकों एवं सूचनाओं का समावेश
- वाणिज्यिक बैंकों के मार्च 2012 तक के समंक
- तेरहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट और 14वें वित्त आयोग का गठन
- प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर पूर्णतः अद्यतन वस्तुनिष्ठ (बहुविकल्पीय) प्रश्न (हल सहित)

आपके निकटतम पुस्तक विक्रेता पर उपलब्ध।

साहित्य भवन | ☎ 0562-3293040 | 08958500222 | info@psagra.in | www.psagra.in

YH-146/2013

आर्थिक वृद्धि, रोज़गार सृजन और ग़रीबी उपशमन

● रिजवानुल इस्लाम

हालांकि ग़रीबी को कम करके आधा करने का मिलेनियम डेवलपमेंट गोल यानी सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (एमडीजी) वर्ष 2015 (1990 की तुलना में) तक का है। बहुत से विकासशील देश ऐसे हैं जो इसमें नाकाम हो सकते हैं। हैरानी की बात ये भी है कि तमाम देश पर्याप्त आर्थिक वृद्धि के बाद भी ग़रीबी से छुटकारा नहीं पा सके हैं। वो उनकी एक बड़ी समस्या बनी हुई है। अनुभव बताते हैं कि भले ही तेज़ और अनवरत दर से ग़रीबी कम करने के लिए आर्थिक तरक्की ज़रूरी स्थिति है, लेकिन ये शायद पर्याप्त नहीं है। तमाम अध्ययन ये भी बताते हैं कि ग़रीबी उन्मूलन के लिए आर्थिक तरक्की की तेज़ दर के साथ वृद्धि का तरीका अगर अहम है तो जरूरी है स्रोतों के साथ लाभार्थियों में इस आर्थिक वृद्धि के ज़रिये पहुंचने वाला वितरण। उत्पादक रोज़गार इस परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्य भूमिका निभाते हैं। अध्ययन ये भी बताते हैं कि आर्थिक विकास और ग़रीबी उन्मूलन के बीच कोई परिवर्तनीय रिश्ता है। रोज़गार व श्रम बाज़ार में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तन भी आर्थिक वृद्धि के तहत ग़रीबी में कमी के नतीजों पर असर डालते हैं।

हालांकि एमडीजी की मूल सूची में रोज़गार को शामिल नहीं किया गया था, लेकिन वर्ष 2008 में एमडीजी में ग़रीबी उन्मूलन के संपूर्ण लक्ष्य और उत्पादक रोज़गार के तहत सभी महिलाओं और पुरुषों को कुछ संकेतकों के साथ इसमें जोड़ा। विचार-विमर्श के फ्रेमवर्क में वर्ष 2015 के बाद के डेवलपमेंट एजेंडा में उत्पादक रोज़गार को प्रमुखता से रखा गया। ग़रीबी में कमी लाने की गति बढ़ाने के लिए आर्थिक वृद्धि को कहीं ज्यादा ग़रीब समर्थक और समावेशी बनाने की बात की गई जो उत्पादक रोज़गार के संबंध में प्रभावी भूमिका अदा करे। महत्वपूर्ण ये भी है कि हम ये समझ सकें कि क्यों आर्थिक वृद्धि कुछ स्थितियों में उत्पादक रोज़गार के विकास में खरा नहीं उतर सका और कैसे आर्थिक वृद्धि को ज्यादा रोज़गारोन्मुख बनाया जा सकता है।

इस मामले में कुछ एशियाई देशों के अनुभव यहां प्रस्तुत हैं जिन देशों ने इस संबंध में अतीत में कुछ सफलता हासिल की, इससे सबक सीखे। लेकिन इस पर चर्चा से पहले फ्रेमवर्क के विश्लेषण की बात करते हैं। जिससे ग्रोथ, रोज़गार और ग़रीबी उन्मूलन के बीच संबंधों को समझा जा सके। ख़ासकर उत्पादक रोज़गार द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के बारे में, जो आर्थिक वृद्धि के फायदों को ग़रीबी उन्मूलन में बदलती है।

एक विश्लेषणात्मक फ्रेमवर्क

धारणात्मक तौर पर आर्थिक वृद्धि के नतीजों, रोज़गार और ग़रीबी के बीच संबंधों के बारे में वृहद और सूक्ष्म दोनों स्तरों पर विश्लेषण कर सकते हैं। वृहद स्तर पर ग़रीबी में आय का पहलू और आर्थिक वृद्धि के नतीजों को संकल्पना के तौर पर रोज़गार कार्यबल की औसत उत्पादकता से जोड़ा जा सकता है, जो वास्तविक मज़दूरी और स्व रोज़गार में निम्न स्तरीय आय को दर्शाता है। परिवारों के स्तर पर ग़रीबी और रोज़गार के बीच वही रिश्ता है, जिसमें आर्थिक गतिविधियों के तहत परिवार के सदस्य कमाई में संलग्न रहते हैं। मानवीय पूंजी कार्यबल के सदस्यों और उन पर निर्भरता का वो दबाव पर तय करती है, जिसमें हिस्सेदारी श्रम बल के साथ लाभकारी रोज़गार की उपलब्धता पर निर्भर करती है।

कार्यबल पर औसत तौर पर उत्पादकता पूंजी की कमी श्रमिक और पिछड़ी तकनीक से जुड़ी होती है। ऐसे में उत्पादक रोज़गार की भूमिका आर्थिक वृद्धि के ज़रिये ग़रीबी उन्मूलन में होती है। जिसमें इस प्रक्रिया को

आकृति-1 : आर्थिक विकास, रोज़गार और ग़रीबी उन्मूलन का चक्र

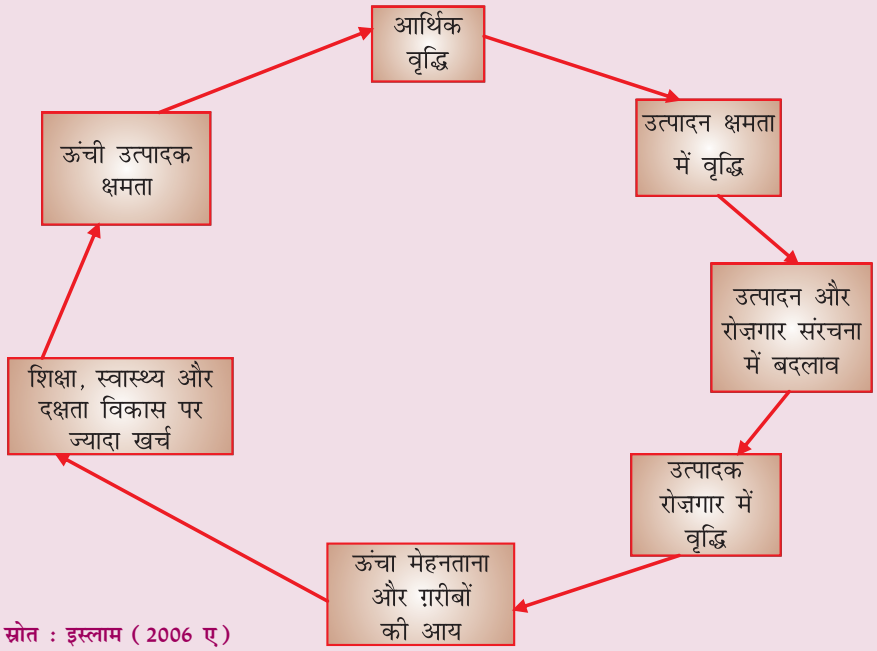

स्रोत : इस्लाम (2006 ए)

टेबल-1 : एशियाई देशों में रोज़गार लोच (ओईई) के नतीजे

देश	ओईई (आर्थिक तौर पर)		ओईई (विनिर्माण)	
	1980 दशक	1990 दशक	1980 दशक	1990 दशक
बांग्लादेश(अ)	0.55ख	0.50ख	0.76ग	0.72ग
कंबोडिया	उपलब्ध नहीं	0.48	उपलब्ध नहीं	0.56
चीन	0.33ख	0.13ख	0.50	0.25घ
भारत	0.40	0.15	0.37	0.29
इंडोनेशिया	0.44ख	0.38ख	0.79च	0.61छ
मलेशिया	0.55	0.48	0.67ज	0.71ज
			0.55झ	0.45झ
श्रीलंका	0.51	0.46	0.64	0.47
थाईलैंड	0.56	0.10	0.55	0.53

नोट और स्रोत :

1. जहां अलग वर्णन न हो, आंकड़े आईएलओ-यूएनडीपी के देश केस स्टडी से लिए गए हैं। इसकी झलक खान (2007) में उपलब्ध है।
2. क: इस्लाम (2006 ए), ख: एशियाई विकास बैंक (2005), ग: आंकड़े त्रि-अंकीय स्तर पर आधारित हैं। चार-अंकीय स्तर के आंकड़े ज्यादा ह्रास दिखाते हैं (0.74 से 0.60)। देखें, अध्याय-5, इस्लाम (2006 ए)। घ: 2002 के आंकड़े। च: 1980-84 के आंकड़े। छ: 1990-94 के आंकड़े। ज: खान (2007)। झ: संवर्द्धित मूल्यों के सापेक्ष लोच।

धारणात्मक तौर पर रखा जा सकता है कि जब एवं ऊंची दर का आर्थिक वृद्धि सतत तौर पर उत्पादन स्तर को बढ़ाने की ओर अग्रसर होता है, तो उत्पादकता में बढ़ोतरी के साथ साथ रोज़गार की संभावनाएं भी बढ़नी चाहिए।

ये आमतौर पर तब होता है जबकि एक संरचनात्मक बदलाव आर्थिक तौर पर क्षेत्र के नतीजों के साथ रोज़गार में दिखे। ऐसे में विकासशील सततता ऐसी होनी चाहिए कि बेरोज़गारों और अल्प बेरोज़गारों को एकीकृत विकास में शामिल कर उच्च स्तरीय उत्पादकता के साथ गतिविधियों को बढ़ाया जाए। इस प्रक्रिया में ग़रीब उच्च उत्पादकता को बढ़ाने में सक्षम होंगे और मौजूदा कार्य में अपनी आय भी बढ़ा सकेंगे या फिर नये रोज़गार की ओर जाएंगे जो उच्च उत्पादकता, दक्षता, क्षमता और बेहतर तकनीक से जुड़ा होगा।

इस प्रक्रिया के नतीजे कई तरह से दर्शाए जा सकते हैं:

- विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादकता बेहतर होगी और उससे जीविका चला रहे लोगों की भी।
- क्षेत्र और इससे जुड़े लोगों के ज़रिये उत्पादकता का स्तर बढ़ने से रोज़गार ढांचे में बदलाव आएगा।
- स्व-रोज़गार के जरिए वास्तविक मेहनताने और आय में बढ़ोतरी होगी

ऊपर बताई गई प्रक्रियाओं से उच्च स्तरीय आय बढ़ेगी, जिससे श्रमिक अपने बच्चों और परिवार की शिक्षा और दक्षता बढ़ाने पर ज्यादा पैसे ख़र्च करेगा, जो भविष्य में कार्यबल की उत्पादक क्षमता बढ़ाएगा और आर्थिक वृद्धि को उच्च स्तर तक पहुंचने के लिए आवश्यक स्थितियां तैयार करेगा। इस तरह से ये प्रक्रिया आर्थिक वृद्धि के एक ऐसे चक्र को बनाएगी जो उत्पादकता में उठान के साथ रोज़गार इजाफे के ज़रिये ग़रीबी उन्मूलन में सहायक साबित होगी।

कुछ अनुभवजन्य साक्ष्य

आर्थिक वृद्धि के नतीजों में समान दर अनुपातिक समर्थन वाले जो अनुभवजन्य साक्ष्य उपलब्ध हैं, वो ग़रीबी उन्मूलन की विभिन्न दरों से जुड़े हैं। जबकि आर्थिक वृद्धि के ग़रीबी उन्मूलन पर अलग-अलग तरह से पडने वाले प्रभाव के कारण भी अलग हो सकते हैं। जिसमें एक महत्वपूर्ण कारक रोज़गारपरक विकास है। आर्थिक वृद्धि में रोज़गार तीव्रता एक संकेतक के रूप में उत्पादन के लिए रोज़गार के अवसर पैदा करता है। अध्ययन में पाया गया कि विनिर्माण उद्योगों में रोज़गार प्रत्यास्थता का ग़रीबी कम करने पर महत्वपूर्ण सांख्यिकी प्रभाव पड़ता है।

इस अध्ययन में ये भी पाया गया कि अन्य रोज़गारों और श्रम बाज़ार को प्रभावित करने वाले कारकों का प्रभाव भी ग़रीबी उन्मूलन पर पड़ता है। प्रभावित करने वाली वस्तुओं में रोज़गार क्षेत्र (मतलब कृषि और विनिर्माण क्षेत्र का अनुपात) , शिक्षा (व्यस्क साक्षरता दर से मापित) और निर्भरता अनुपात शामिल हैं। 40 विकासशील देशों से प्राप्त डेटा के इस्तेमाल और रोज़गार प्रतिगमन तकनीक के अध्ययन से पता लगा कि रोज़गार क्षेत्र का ग़रीबी पर जबरदस्त असर पड़ता है। विनिर्माण क्षेत्र से जुड़े श्रमिकों का एक बड़ा अनुपात ग़रीबी की निम्नतम दर से जुड़ा होता है। जबकि कृषि का मामला इससे विपरीत है। जब हम ग़रीबी की बात करते हैं तो देखते हैं कि ये शिक्षितों के वर्कफोर्स के अनुपात से नकारात्मक तौर पर जुड़ी है और निर्भरता के साथ सकारात्मक तौर पर संलिप्त है।

रोज़गार तीव्रता के विकास की परिकल्पना के समर्थन में ये कहा जा सकता है कि इसने ग़रीबी उन्मूलन पर असर डाला है, इसे एशिया के विकासशील देशों के अनुभव को देखकर समझा जा सकता है। अब ये सर्वविदित है कि 1980 और 1990 के दशक में पूर्व और दक्षिण पूर्व एशिया (जिन्हें ईएसईए भी कहते हैं) के कई देशों मसलन-कोरिया गणराज्य, मलयेशिया, इंडोनेशिया और थाईलैंड ने दक्षिण एशियाई देशों की तुलना में न केवल उच्च आर्थिक वृद्धि दर को हासिल किया बल्कि उच्च दर से ग़रीबी उन्मूलन भी किया। इसमें पहले बताए गए देशों में उत्पादक रोज़गार की भूमिका साफ दिख जाती है। रोज़गार

प्रत्यास्थता की नतीजों से तुलना करने के लिए बनाए गए देशों के दो ग्रुपों में अंतर साफ दिखता है। (देखें टेबल)। पहले बताए गए देशों में विकास के उच्च नतीजों का ताल्लुक उच्च रोज़गार वृद्धि दर से है, जिससे श्रम बाज़ार न केवल मजबूत हुआ बल्कि मेहनताने भी बढ़े।

भारत ने उच्च आर्थिक वृद्धि दर हासिल की लेकिन उच्च ग़रीबी उन्मूलन दर हासिल नहीं कर सका। (ख़ासकर 1990 के दशक में)। हालांकि जनगणना में ये दिखा कि 1990 के दशक में हुए आर्थिक वृद्धि से ग़रीबी में कमी आई। कैसे ये कहना मुश्किल है कि ग़रीबी उन्मूलन की दर उस दौरान ज्यादा थी या उसके पहले के दशकों में। वर्ष 2004-05 में ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वालों का आधिकारिक अनुमान 27.8 फीसदी था और 1993 से 2004-05 के बीच ग़रीबी में प्रति वर्ष 0.74 की दर से कमी आने का अनुमान लगाया गया। आधिकारिक अनुमानों के अनुसार ग़रीबी में कमी की दर हर साल 0.79 फीसदी थी। वर्ष 1993-94 से 1999-2000 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी की तुलना में ग़रीबी में कमी की दर 1.13 थी जबकि 1999-2000 से 2004-05 के बीच ग़रीबी उन्मूलन का आंकड़ा 0.69 का था।

अगर इन आंकड़ों पर नजर दौड़ाएं और उन्हें रोज़गार व श्रम बाज़ार से जोड़ें तो ये देखना संभव होना चाहिए कि ग़रीबी उन्मूलन में आर्थिक वृद्धि के क्या फायदे हैं। हालांकि शोधकर्ताओं के बीच ये सर्वसम्मति बना पाना बहुत मुश्किल है कि भारत के श्रम बाज़ार में तब क्या हुआ, कुछ आर्थिक वृद्धि तो साफ नज़र आती हैं। पहला-1990 के दशक की गिरावट की तुलना में 1980 में विनिर्माण क्षेत्र के रोज़गार में सकारात्मक वृद्धि दिखा था लेकिन 1990 के दशक में सकल रोज़गार वृद्धि में कमी आई थी (1983 से 1993-1994 के 2.04 फीसदी की तुलना में 1993-1994 से 1999-2000 में 0.97 फीसदी)। ये गिरावट शहरी इलाकों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा तेज़ तरीके से देखी गई। इसके बावजूद ये ट्रेंड 1999-2000 से 2004-05 के बीच उल्टा होकर प्रति वर्ष 2.6 फीसदी हो गया। लेकिन बेरोज़गारी दर में भी वृद्धि जारी रही, जो 1993-94 में 6.1 फीसदी से बढ़कर 1999-2000 में 7.3 प्रतिशत हो गई और फिर 2004-05 में और बढ़कर 8.3 फीसदी पर जा पहुंची। रोज़गार प्रत्यास्थता में समूचे आर्थिक तौर पर और बड़े क्षेत्रों जैसे एग्रीकल्चर और मैन्यूफैक्चरिंग में 1990 के दशक में कमी रिकार्ड की गई। 2000 के दशक के उत्तरार्ध में रोज़गार प्रत्यास्थता सुधरी लेकिन 1980 के दशक के न्यूनतम स्तर पर रही।

स्थितियों में कोई सुधार 2005-10 के दौरान भी नहीं हुआ। हालांकि मुक्त बेरोज़गारी की दर 2004-05 में 8.2 फीसदी से गिरकर 2009-10 में 6.6 फीसदी हो गई। ये नहीं कहा जा सकता कि आर्थिक वृद्धि के नतीजों से रोज़गार की स्थिति बेहतर हुई। जबकि कुल रोज़गार के सालाना आर्थिक वृद्धि की दर 1983 से 2004-05 के बीच 1.9 फीसदी से गिरकर 2004-05 से 2009-10 के दौरान 0.1 फीसदी हो गई। इसके बाद मैन्यूफैक्चरिंग में बाद के समय में नकारात्मक असर दिखने लगे, रोज़गार तब 1.12 फीसदी की तुलना में इससे पहले की अवधि में 2.5 फीसदी थी। ये तब था कि जब आर्थिक वृद्धि के नतीजे इस क्षेत्र में प्रति वर्ष 9.3 फीसदी थे, जो काफी असरदार माने गए थे। इस तरह ये स्पष्ट है कि मैन्यूफैक्चरिंग सेक्चर में रोज़गार प्रत्यास्थता गिरकर 1980 के दशक के न्यूनतम स्तर पर आ गई।

एशिया के कई देशों की नीतियों के क्रियान्यन और तुलनात्मक अनुभव से ईएसईए

टेबल 2 : दक्षिण एशिया में उच्च ग़रीबी उन्मूलन दर के ऊंची आर्थिक वृद्धि के अनुभव का अवलोकन

देश और अवधि	आर्थिक वृद्धि का ढांचा	शासित नीतियों की विशेषताएं	अवलोकन
इंडोनेशिया (1970, 1980 और 1900 से 1996 तक)	1970 में कृषि विकास और ग्रामीण गैर कृषि गतिविधियां, फिर 1980 व 1990 में श्रमिक गहन औद्योगिकीकरण	कृषि उपयोग के सामानों पर सब्सिडी और उपज पर प्रोत्साहन मूल्य, संरचना पर निवेश, व्यापार उदारीकरण और विनिमय दरों में सुधार	व्यापार में ऊंची आर्थिक वृद्धि के बाद ग़रीबी उन्मूलन में एशियाई आर्थिक संकट से बाधा। ग़रीबी अभी समस्या
मलेशिया (1970 तक)	कृषि के विकास के साथ 1980 के दशक तक श्रमिक गहन औद्योगिकीकरण	बड़े पैमाने पर कृषि विकास प्रोजेक्ट्स, निर्यात आधारित इंडस्ट्री को कई तरह के प्रोत्साहन, ट्रेनिंग, रिसर्च एंड डेवलपमेंट और लाइसेंसी वेयरहाउस पर सब्सिडी	रोज़गार और जगह को प्रोत्साहन से जोड़ा गया, 1990 के दशक के बाद उद्योगों में रोज़गार तीव्रता में गिरावट
थाईलैंड (19800 और 1990 से 1996 तक)	कृषि विकास और ग्रामीण गैर कृषि गतिविधियों के बाद श्रमिक गहण औद्योगिकीकरण	कृषि निवेश को संरचना में निवेश करने से नियमों को तोड़े जाने के बाद विस्तारित भूमि नीतियां, व्यापार उदारीकरण, स्थायित्वपूर्ण विनिमय रेट, कम मुद्रास्फीति और व्यापार अनुकूल नीतियां	क्षेत्रीय विभिन्नता-उत्तर और दक्षिण काफी पीछे– ये बड़ा मुद्दा। आय असमानता का बढ़ना भी चिंता
वियतनाम (1990)	कृषि विकास और ग्रामीण गैर कृषि गतिविधियां, प्राइवेट सेक्टर का विकास	कृषि में सांस्थानिक सुधार, कृषि मूल्यों का उदारीकरण, विनिमय दरों में सुधार, राज्य स्वामित्व वाले उद्यमों में सुधार, प्राइवेट सेक्टर को बढ़ावा।	ग़रीबी उन्मूलन की दर घटी, आय असमानता बढ़ी। मैन्यूफैक्चरिंग में रोज़गार तीव्रता कम हुई

स्रोत : *इस्लाम (2008)*

क्षेत्र के देशों के प्रभावशाली प्रदर्शन का पता लगता है कि किस तरह सतत समावेशी रोज़गार वृद्धि ने यहां ग़रीबी उन्मूलन में योगदान दिया। इस लेख में टेबल के ज़रिये इसे दिखाया भी गया है, क्योंकि इन सभी देशों की शासित नीतियों के विवरण में जा पाना संभव नहीं होगा। हालांकि संक्षिप्त जानकारी संबंधित टेबल में जरूर दी गई है।

आर्थिक वृद्धि के तौर तरीकों से संबंधित कई बिंदु हासिल किए जा चुके हैं और ईएसईए के देशों द्वारा अपनाई गई नीतियां भी ध्यान देने योग्य हैं। पहली बात, जो आर्थिक नीतियां उन्होंने अपनाईं उससे प्रेरणादायक ढांचा सुनिश्चित हुआ और उन देशों ने नतीजों को श्रमिक गहन उद्योगों और निर्माण में निवेश किया, जिससे उत्पादक रोज़गार का विकास उच्च दर पर पहुंच गया। दूसरी बात-उन्होंने औद्योगिकीकरण की निर्यातोन्मुख नीतियों का अनुकरण किया। इसके तहत निर्यातोन्मुखी श्रमिक सघन इंडस्ट्रीज को प्रोत्साहन दिया गया। तीसरी बात-कृषि (सबसे ग़रीब लोग शुरू में इसी क्षेत्र से जुड़े हुए थे) को बिल्कुल अनदेखा नहीं किया गया। कृषि का विकास और ग्रामीण गैर कृषि गतिविधियों को कई तरीकों से बढ़ावा दिया गया, जिसमें सांस्थानिक सुधारों से लेकर नीतियां तक के ज़रिये कृषि व्यापार के साथ गैर कृषि क्षेत्र को बढ़ावा दिया गया।

उच्च आर्थिक वृद्धि के फायदों के ज़रिये उत्पादक रोज़गार की वृद्धि की स्थितियां तैयार करके ग़रीबी उन्मूलन को प्रभावशाली दर में बदलने में सफलता पाने के बावजूद ईएसईए देशों ने तमाम समस्याओं का सामना किया। कुछ देशों में (मतलब इंडोनेशिया) इस प्रक्रिया में वर्ष 1997-98 का एशियाई आर्थिक संकट आड़े आ गया। कुछ देशों (जैसे थाईलैंड और वियतनाम) में आय का असमान वितरण देखने में आया। दिक्कतों के बावजूद इन देशों ने मोटे तौर पर उत्पादक रोज़गार की वृद्धि के साथ आर्थिक वृद्धि की ऊंची दर और तेज़ी से ग़रीबी उन्मूलन की दर के तालमेल को जारी रखा।

ईएसईए देशों के अनुभव की तुलना में दक्षिण एशिया के देशों में ऐसी नीतियों के उदाहरण पाना कठिन नहीं है, जो नौकरियों के विकास में मददगार नहीं हैं। हालांकि उन्होंने आधिकारिक तौर पर आर्थिक वृद्धि और औद्योगिकीकरण के लिए आयात स्थानापन्न रणनीति पर ज़ोर दिया, उत्पादन के कारकों की बाज़ार क़ीमतें कभी कभी उनकी सही कमी को प्रतिबिंबित नहीं करतीं। उदाहरण के लिए भारत में निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कई तरह के राजकोषीय और मौद्रिक प्रोत्साहन प्रदान किए गए। उसमें पूंजी निवेश रियायत, ब्याज पर रियायत, बढ़ते अवमूल्यन दर के बावजूद मशीनरी उन्नयन को सुगम बनाना, निर्यात संवर्धन पूंजीगत गुड्स योजना और स्मॉल स्केल उद्योग इकाइयों के लिए तकनीक उन्नयन के लिए साख आधारित पूंजी रियायत जैसे उपाय शामिल हैं। लेकिन ये सारे उपाय पूंजी की ज़रूरत से ज्यादा इस्तेमाल को बढ़ावा देते हैं। इनमें कहीं भी श्रमिकों को प्रोत्साहन देने के उपाय शामिल नहीं हैं। एक अध्ययन (चंद्रशेखर, 2008) में पाया गया कि 1995-96 और 2003-04 के बीच उद्योगों में मज़दूरी के पैसे में 37 फीसदी बढ़ोतरी बेशक हुई लेकिन पूंजी की लागत का सूचकांक (ब्याज की दर के संयुक्त प्रभाव के प्रतिनिधित्व वाले और पूंजीगत वस्तुओं की क़ीमत का एक सूचकांक) 18 फीसदी तक गिर गया। इस प्रकार श्रम के सापेक्ष पूंजी की क़ीमत में 55 फीसदी नकारात्मक बदलाव देखने को मिला-पूंजी गहन क्षेत्रों और प्रौद्योगिकी की राह में ये बड़ा विरुपण था।

नेपाल ने आयात शुल्क पर कृत्रिम तौर पर कम दरों पर भारी निर्माण मशीनरी के आयात की अनुमति दी। ये समय से पहले निर्माण क्षेत्र में मशीनीकरण के लिए उठाया गया कदम था, इससे नौकरियां भी कम सृजित हुईं, ज्यादा बेहतर था कि कुछ और सृजित किया गया होता।

रोज़गार अनुकूल आर्थिक वृद्धि

आर्थिक वृद्धि की रोज़गार तीव्रता को श्रमिक गहन क्षेत्र में प्रोत्साहित करके बढ़ाया जा सकता है। इसलिए रोज़गार के गहन विकास के लिए ऐसी रणनीति बनानी होगी जो नीतियों के अनुकूलन में शामिल हो, जिससे इस तरह के क्षेत्रों में ग्रोथ को तब तक प्रोत्साहित किया जाए, जब तक अतिरिक्त उपलब्ध श्रमिकों को खपा नहीं लिया जाए। यदि विभिन्न क्षेत्रों और सब क्षेत्रों में रोज़गार तीव्रता के परिमाण को देखा जाए तो कोई भी इन क्षेत्रों को आसानी से चिह्नित कर सकता है।

नीतियों को आर्थिक और श्रमिक बाज़ार दोनों मोर्चों पर अपनाए जाने की ज़रूरत है। आर्थिक मोर्चे, वृहद आर्थिक स्तर पर नीतियों के रूप में और साथ ही क्षेत्र स्तर पर आर्थिक वृद्धि के ज़रिये रोज़गार नतीजों के लिए महत्वपूर्ण क्रियान्वयन किए जा सकते हैं। इसलिए वैकल्पिक योजनाओं के रोज़गार के संभव प्रभाव पर पॉलिसी पैकेज बनाने से पहले उसके मूल्यांकन की ज़रूरत को ज़रूर देखा चाहिए। ठोस संदर्भों में आर्थिक मोर्चे पर निम्नलिखित कार्रवाई उपयोगी होगी–

- वृहद आर्थिक स्थिरता लाने के लिए योजनाओं का रोज़गार पर असर का विश्लेषण।
- रोज़गार अवसर पर बजटीय आवंटन का विश्लेषण, विश्लेषणों के नतीजे, जिससे आवंटन संबंधी फैसले लिए जा सकें।
- एक आर्थिक व्यवस्था की प्रेरणादायी संरचना की जांच कि क्या ये उत्पादन के सभी पहलुओं पर सही है।
- ज़रूरत पड़ने पर सही योजनाएं और तरीके सुनिश्चित किए जाएं जिससे श्रमिक प्रोत्साहन क्षेत्र में नीतिगत माहौल को धक्का नहीं पहुंचे।
- श्रमिक गहन क्षेत्रों को सकारात्मक समर्थन यानि बाज़ार तक पहुंच के साथ इन क्षेत्रों में उद्यमों को मदद, प्रौद्योगिकी उन्नयन के ज़रिये प्रतिस्पर्धा में सुधार और उत्पादकता बढ़ाना।

श्रम बाज़ार नीतियों के बनने के बाद से ही श्रम बाज़ार की सख्ती की बात कहकर रोज़गार सृजन में बाधा पैदा करने का आरोप लगाया जाता रहा है। बेहतर होगा कि जांच की जाए कि क्या इस तरह के तर्कों के समर्थन में क्या कोई अनुभवजन्य साक्ष्य हैं। अगर ऐसा है तो ज़रूरी है कि श्रम बाज़ार संस्थानों के इस ख़ास पहलू को सावधानीपूर्वक पहचाना जाए, और ये भी देखा जाए कि क्या उनमें सुधार की ज़रूरत है। हालांकि श्रम बाज़ार में लोच की आवश्यकता पर विचार हो। साथ ही इन आवश्कताओं को श्रमिकों की सुरक्षा और सुरक्षा की आवश्यकता के साथ जोड़ा जाए। ❑

(लेखक अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के जिनेवा मुख्यालय में रोज़गार क्षेत्र के विशेष सलाहकार रह चुके हैं।।

ई-मेल : rizwanul.islam49@gmail.com)

जनसांख्यिकीय लाभांश या जनसांख्यिकीय अभिशाप

● अरविंद कुमार सेन

'कोई भी ऐसा समाज सुखी और संपन्न नहीं हो सकता है, जिसके अधिकांश सदस्य निर्धन और दयनीय हों।'

–एडम स्मिथ

आप कह सकते हैं, ग़रीबों की धड़कन सुनने वाले गांधी के इस देश में हमें एडम स्मिथ का रुख करने की जरूरत नहीं है। आज़ादी के बाद देश पर राज करने वाली सभी पार्टियों की सबसे पहली प्राथमिकता विकास के रास्ते पर चलते हुए लोगों को ज्यादा से ज्यादा रोज़गार मुहैया करवाना रहा है। सब हाथों में काम देकर ही देश की विशाल आबादी को ग़रीबी के अभिशाप से आज़ादी दिलाई जा सकती है। मगर क्या हम इस मकसद में कामयाब रहे हैं या इसे पाने के करीब पहुंचे हैं? जवाब नहीं और हां के बीच झूल रहा है। विकास, ग़रीबी और रोज़गार, तीनों ही पैमानों पर देश आगे बढ़ा है लेकिन आगे बढ़ने की रफ़्तार उम्मीदों के मुताबिक नहीं रही है। लगभग हमारे साथ ही शुरुआत करने वाले दक्षिण कोरिया और चीन जैसे देश शुरुआती दौर में भारत से पीछे होने के बावजूद आज आगे निकल चुके हैं। चीन तीन दशक तक दस फीसदी विकास दर हासिल कर चुका है लेकिन भारत एक बार भी यह आंकड़ा छूने में नाकाम रहा है। जैसा कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कई दफा दोहराया है, देश की विशाल आबादी को ग़रीबी और बेरोज़गारी के भंवर से बाहर निकालने के लिए दस फीसदी की विकास दर ज़रूरी है। मगर दस फीसदी की विकास दर हासिल करने से भी बड़ा एक सवाल यह है कि हम 1990 के बाद हासिल की गई तेज़ विकास दर का फायदा भी सारे तबकों तक नहीं पहुंचा पाए।

जिस रफ़्तार से दुनिया के बाकी देशों ने तेज़ आर्थिक विकास के सहारे ग़रीबी और बेरोज़गारी में ज़ोरदार कमी की है, हम वह रफ़्तार नहीं हासिल कर पाए हैं। सीधे लफ़्ज़ों में कहें तो हमारा विकास समावेशी नहीं रहा है और इसका फायदा पहले से ही संपन्न तबकों तक ही सीमित रहा है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना की पंचलाइन है 'तेज, स्थायी और ज्यादा समावेशी विकास।' दरअसल, हमारी समस्या इसी जगह से शुरू होती है। हम बच्चे को जवान करके बेहतर नागरिक बनाने का प्रशिक्षण देना चाहते हैं जबकि यह शुरुआत बचपन से ही होनी चाहिए। पहले ऊंची विकास दर हासिल करने का लक्ष्य रखा गया और अब इस विकास को समावेशी बनाने की बात कही गई है। पूरी दुनिया में कहीं ऐसा नहीं हुआ है कि पहले अर्थव्यवस्था का विकास किया गया हो और बाद में विकास का फल सारी आबादी तक पहुंचाने के लिए आर्थिक विकास को समावेशी बनाने का अभियान चलाया गया हो। हमारे आर्थिक विकास को समावेशी बनाने की मांग इस बात का सबूत है कि विकास के मॉडल में बुनियादी स्तर पर कुछ खामी रह गई है। असल में हम शिक्षा और स्वास्थ्य में निवेश की मार्फत देश के मानव संसाधन को कौशल से लैस शिक्षित कामगारों में नहीं बदल पाए हैं।

अगर दक्षिण कोरिया को आबादी और भौगोलिक लिहाज़ से छोटा होने के कारण अलग रखें तब भी चीन से भारत की तुलना वाजिब है। 1950 से 1976 के बीच भारत और चीन आर्थिक विकास और मानव विकास सूचकांकों के मामले में एक ही पायदान पर थे बल्कि कई पैमानों पर भारत आगे था। 1970 के दशक से चीन ने एक तरफ अपनी अर्थव्यवस्था को वैश्विक निवेशकों के लिए खोलना शुरू किया वहीं दूसरी ओर शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रों में भारी निवेश करना शुरू कर दिया। चीन ने बड़े पैमाने पर व्यावसायिक शिक्षा में भी निवेश किया। दो दशक के भीतर ही चीन में शिक्षित, स्वस्थ और कौशल युक्त युवाओं की फौज तैयार हो गयी थी। 1990 में चीन ने अपने विनिर्माण क्षेत्र को मज़बूत करना शुरू किया और अपने युवाओं को इसमें खपाना शुरू कर दिया। हालांकि 1980 से भारत ने भी अपनी अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ समायोजित करना शुरू कर दिया लेकिन हम शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र को मज़बूत करने में असफल रहे। 1990 से 2010 के बीच भारतीय अर्थव्यवस्था औसत छह से सात फीसदी की विकास दर से आगे बढ़ी है और किसी भी लिहाज़ से यह विकास दर ख़राब नहीं कही जा सकती है। दिक्क़त यह रही कि भारतीय अर्थव्यवस्था ने यह विकास सेवा क्षेत्र खासकर सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों के दम पर हासिल किया है। यही वजह हमारे विकास से समावेशी शब्द को अलग कर देती है और भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास को बाकी दुनिया के आर्थिक विकास के अनुभव से अलग करती है।

फिलहाल भारत की जीडीपी में सेवा क्षेत्र की हिस्सेदारी 60 फीसदी से ज्यादा है जबकि जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र का योगदान महज 16 फीसदी है। चीन, सिंगापुर, जापान, दक्षिण कोरिया और दुनिया के विकसित देशों की जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र की हिस्सेदारी 30 फीसदी से ज्यादा है। विनिर्माण क्षेत्र को दुनियाभर में अहमियत दिए जाने की मुख्य वजह यह है कि इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर नौकरियां पैदा होती हैं और इन नौकरियों में

कम प्रशिक्षित युवाओं से लेकर उच्च कौशल वाले अधिकारियों तक हर तबके को खपाया जा सकता है। वहीं सेवा क्षेत्र में बहुत कम नौकरियां पैदा होती हैं और इन कम नौकरियों में भी बेहद उच्च कौशल वाले लोगों की मांग होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में भारतीय अर्थव्यवस्था ने ऊंची विकास दर सेवा क्षेत्र के सहारे ही हासिल की है लेकिन यह जगजाहिर है कि सेवा क्षेत्र में बड़े पैमाने पर नौकरियां पैदा नहीं होती हैं। मिसाल के तौर पर सेवा क्षेत्र की अगुवा भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी कंपनियों में महज 20 लाख लोगों को प्रत्यक्ष रोज़गार मिला हुआ है। याद रखिए, 2002-03 से 2006-07 के बीच सेवा क्षेत्र ने भारत की जीडीपी में औसत 68.6 फीसदी योगदान दिया है और इसी दरम्यान भारतीय अर्थव्यवस्था ने सालाना औसत आठ फीसदी से ज्यादा की विकास दर के रूप में अपनी अब तक की सबसे ऊंची विकास दर हासिल की थी।

मतलब भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के सबसे बेहतरीन दौर में सेवा क्षेत्र ने जीडीपी में सबसे ज्यादा योगदान दिया है मगर इस सेवा क्षेत्र में सबसे कम रोज़गार पैदा होते हैं। यही कारण है कि बीते दशक में हासिल की गई भारतीय अर्थव्यवस्था की ऊंची विकास दर को रोज़गार विहीन विकास (जॉबलेस ग्रोथ) का दौर कहा जाता है। सेवा क्षेत्र में पैदा हुई ऊंचे वेतन वाली नौकरियां का फायदा भारतीय शहरों में रहने वाले पहले से ही संपन्न तबकों के लोगों ने उठाया। पहले से ही हाशिये पर रह रही देश की विशाल ग्रामीण आबादी की हालत इस दौर में और ज्यादा बिगड़ गई। ऊंची विकास दर के बावजूद हम चीन और दक्षिण कोरिया की तरह ग़रीबी दूर नहीं कर पाए क्योंकि हमारा विकास सेवा क्षेत्र पर हद से ज्यादा निर्भर था। आधुनिक आर्थिक विकास का सबसे पहले स्वाद चखने वाले ब्रिटेन से लेकर चीन और दक्षिण कोरिया तक दुनिया के सारे देशों ने विकास का एक ही रास्ता अपनाया है। सबसे पहले सरकार शिक्षा-स्वास्थ्य जैसी बुनियादी जरूरतों में निवेश करके कौशल युक्त कामगार तैयार करती है और इसके बाद विनिर्माण क्षेत्र को मज़बूत करके इस कामगार आबादी के हाथ में रोज़गार दिया जाता है। जैसे-जैसे लोगों को विनिर्माण क्षेत्र में ऊंचे वेतन पर ज्यादा उत्पादक काम मिलता है, उसी रफ़्तार से कृषि क्षेत्र पर दबाव कम होता जाता है।

चूंकि कृषि क्षेत्र में ज़रूरत से ज्यादा जुड़े लोगों को धीरे-धीरे विनिर्माण क्षेत्र में समायोजित कर लिया जाता है, लिहाजा कुछ समय बाद कृषि क्षेत्र भी लाभ का धंधा बन जाता है। विनिर्माण क्षेत्र के सहारे लंबे समय तक विकास करने के बाद अर्थव्यवस्थाओं में ऐसा दौर आता है जब देश विकसित हो जाता है और कृषि क्षेत्र से पूरी तरह किनारा करके सेवा क्षेत्र का रुख कर लेता है। अफ़सोस, भारतीय आर्थिक विकास का मॉडल इस परखी हुई राह पर नहीं चल रहा है। हमारी अर्थव्यवस्था ने कृषि क्षेत्र से विनिर्माण क्षेत्र में जाने की बजाय सीधे ही सेवा क्षेत्र में छलांग लगा दी है। विडंबना देखिए, आज़ादी के वक़्त देश की जीडीपी में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 57 फीसदी थी और इस क्षेत्र पर देश की 65 फीसदी से ज्यादा आबादी टिकी हुई थी। वित्त वर्ष 2012-13 के दरम्यान देश की जीडीपी में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 57 फीसदी से घटकर महज 14.2 फीसदी रह गई है लेकिन इस क्षेत्र पर निर्भर लोगों की तादाद अब भी 53 फीसदी से ज्यादा है। यानी बीते छह दशकों के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी लगातार कम हुई है मगर खेती-किसानी से जीवनयापन करने वाले लोगों की तादाद में कोई खास गिरावट नहीं आई है। परिणाम, खेती लाभ की बजाय कर्ज़ के धंधे में बदल गई है। देश में कृषि भूमि का औसत आकार 1970-71 में 2.28 हेक्टेयर था जो 2005-06 में घटकर 1.23 हेक्टेयर रहा और 2010-11 में महज 1.16 हेक्टेयर रह गया है। 2005-06 में हाशिये पर रहने वाले छोटे किसानों (चार हेक्टेयर से कम कृषि भूमि वाले किसान) की संख्या 83.2 फीसदी थी जो 2010-11 में बढ़कर 85 फीसदी हो गई है।

दुनिया के विकसित देशों में जोतों का आकार बड़ा है और खेती से गुज़ारा करने वाली आबादी की तादाद कम है। मिसाल के तौर पर अमरीका में एक किसान के पास औसत 175 हेक्टेयर कृषि भूमि है और दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था में महज 22 लाख किसान हैं। भारत में औसत कृषि भूमि 1.16 हेक्टेयर आकार की है और मालिकाना हक़ का आलम यह है कि यह जमीन 2005-06 में 12.9 करोड़ लोगों के हाथ में थी जो 2010-11 में बंटकर 13.8 करोड़ हाथों में चली गई। दरअसल, एक सीमा से ज्यादा बंटवारा होने पर छोटे जोतों के कारण कृषि भूमि फायदे का सौदा नहीं रहती है। बावजूद इसके देश की आधी से ज्यादा आबादी कृषि क्षेत्र पर टिकी हुई है क्योंकि हम अर्थव्यवस्था के बाकी क्षेत्रों में इस आबादी को ज्यादा उत्पादक काम मुहैया करवाने में असफल रहे हैं। जोतों का आकार छोटा होने के बावजूद खेती करते जाने के दुष्परिणाम हम बढ़ती ग़रीबी और आए दिन सामने आ रही किसानों की आत्महत्या की ख़बरों के रूप में देख रहे हैं। भारत की ग़रीबी और कृषि क्षेत्र का चोलीदामन का साथ है। ऐसे में कृषि क्षेत्र की आबादी को अर्थव्यवस्था के बाक़ी क्षेत्रों में रोज़गार दिए बिना ग्रामीण ग़रीबी और बेरोज़गारी की समस्या को दूर करना मुमकिन नहीं है।

मगर सवाल फिर उसी मोड़ पर आ जाता है कि बड़े पैमाने पर लोगों को उत्पादक रोज़गार विनिर्माण क्षेत्र में ही दिया जा सकता है और विनिर्माण क्षेत्र हमारी अर्थव्यवस्था की कमज़ोर नस है। कई मर्तबा इस बात को दोहराया जाता है कि भारत की 60 फीसदी आबादी 35 साल से कम उम्र की है। दूसरे अल्फाजों में, भारत में नागरिकों की औसत आयु 25 साल है जबकि विकसित देशों में यह आंकड़ा 40 साल है। औसत आयु कम होने के कारण एक तरफ देश में काम करने वाले लोगों की संख्या ज्यादा होती है वहीं दूसरी ओर बूढ़े नागरिकों की कम तादाद होने के कारण स्वास्थ्य, पेंशन और देखभाल जैसी बुनियादी जरूरतों पर होने वाला ख़र्च बेहद कम रह जाता है। कमाई ज्यादा और ख़र्च कम, बड़ी युवा आबादी के दो बड़े फायदे हैं। अर्थशास्त्री इसे जनसांख्यिकीय लाभांश (डेमोग्राफिक डिवीडेंड) कहते हैं। मगर इस डेमोग्राफिक डिवीडेंड का फायदा उठाने के लिए युवाओं की शिक्षा और उनके कौशल विकास में निवेश करना ज़रूरी है। अगर युवाओं का कौशल विकास करके उनके हाथों में रोज़गार नहीं दिया गया तो किसी भी देश के लिए इससे ख़तरनाक बात कुछ नहीं हो सकती है। आईआईएम काशीपुर के दीक्षांत समारोह में राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने देश को चेताया कि विशाल युवा आबादी लेकिन बेरोज़गार, एक देश के लिए यह सबसे बुरी स्थिति है।

अफ़सोस, हमारा जनसांख्यिकीय लाभांश विकास की खामियों के कारण जनसांख्यिकीय अभिशाप बनने की दिशा में बढ़ता जा रहा है। उच्च शिक्षा की पहुंच मापने के लिए वैश्विक स्तर पर सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) का इस्तेमाल किया जाता है। जीईआर के जरिये यह पता चलता है कि उच्च माध्यमिक (10+2) स्तर की शिक्षा पूरी करने के बाद कितने युवा स्नातक स्तर की शिक्षा हासिल करने के लिए विश्वविद्यालयों में प्रवेश कर रहे हैं। हमारे देश का जीईआर महज 12 फीसदी है, यानी विद्यालयी शिक्षा हासिल करने वाले हर 100 युवाओं में से महज 12 ही उच्च शिक्षा हासिल करने आते हैं। आगे केवल आठ फीसदी युवा पोस्ट ग्रेजुएशन की शिक्षा हासिल करते हैं और शोध के लिए महज तीन फीसदी युवा बचते हैं। हमारी आर्थिक दुर्दशा के लिए काफी हद तक यह आंकड़ा जिम्मेदार है क्योंकि स्थायी ऊंची विकास दर को सहारा देने के लिए हमारे पास पर्याप्त संख्या में कौशल युक्त शिक्षित युवा आबादी नहीं है। विकसित देशों में जीईआर 40 फीसदी से ज्यादा है वहीं चीन और दक्षिण कोरिया जैसे विकासशील देशों में जीईआर 30 फीसदी से ऊपर है। सालान दस फीसदी की दर से विकास करने और दुनिया का मैन्युफैक्चरिंग हब बनने के लिए चीन ने अपनी जीडीपी का आठ फीसदी से ज्यादा शोध व विकास (आरएंडडी) पर ख़र्च किया है और अब जीडीपी का दस फीसदी शोध पर ख़र्च करने का लक्ष्य रखा है। भारत अपनी जीडीपी का महज एक फीसदी शोध पर ख़र्च करता है।

सरकार ने अर्थव्यवस्था में कौशलयुक्त युवा आबादी की आपूर्ति बढ़ाने के लिए बीते एक दशक के दरम्यान शिक्षा क्षेत्र में कई बड़े बुनियादी बदलाव वाले फ़ैसलों पर अमल किया है लेकिन इस आपाधापी में गुणवत्ता हाशिये पर चली गई है। जवानी की दहलीज पर क़दम रख रहे हमारे अधिकांश युवाओं की शिक्षा वैश्विक मानकों से बेहद नीचे है और उनकी आकांक्षाओं के मुताबिक अर्थव्यवस्था में नौकरियां पैदा नहीं हो रही हैं। भारतीय युवाओं की शिक्षा और व्यावसायिक कौशल मौजूदा नौकरियों के लिए भी पर्याप्त नहीं है। समय-समय पर कई संगठनों ने इस काले पक्ष पर रोशनी डाली है। भारतीय उद्योग संगठन (सीआईआई) की हालिया रिपोर्ट के अनुसार देश के 90 फीसदी स्नातक, 75 फीसदी इंजीनियरिंग स्नातक और 80 फीसदी मैनेजमेंट पोस्ट ग्रेजुएट नौकरी देने लायक नहीं हैं। सबसे बड़ी दिक्क़त यह है कि इनमें से 60 फीसदी ऐसे युवा हैं जिन्हें प्रशिक्षण देने के बाद भी नौकरी पर नहीं रखा जा सकता है। हमारे शिक्षा क्षेत्र में व्यावसायिक शिक्षा और शोध की लगातार अनदेखी की गई है जबकि मजबूत विनिर्माण क्षेत्र के लिए इन दोनों की बेहद ज़रूरत होती है।

कोई दो राय नहीं है कि दुनिया में भारत के पास सबसे बड़ी युवा आबादी है लेकिन यह तादाद अशिक्षित, अप्रशिक्षित और कौशल से विहीन भीड़ के रूप में है। 2010 में भारत की बेरोज़गारी दर 3.8 फीसदी थी लेकिन युवा पुरुषों में बेरोज़गारी दर 9.9 फीसदी और युवा महिलाओं में बेरोज़गारी दर 11.3 फीसदी थी। युवाओं में बेहद ऊंची बेरोज़गारी हमारे आर्थिक विकास की मूक आलोचना है। चूंकि हमारा विनिर्माण क्षेत्र टूटा पड़ा है और सेवा क्षेत्र में इस विशाल आबादी को खपाया नहीं जा सकता है, लिहाजा यह भीड़ अनौपचारिक क्षेत्र (इनफॉर्मल सेक्टर) का रुख कर रही है। अनौपचारिक क्षेत्र की नौकरियों में कोई सामाजिक या आर्थिक सुरक्षा नहीं होती है और इनमें बेहद कम वेतन दिया जाता है। ऐसे में अनौपचारिक क्षेत्र ऊंट के मुंह में जीरे की तर्ज़ पर बेरोज़गार युवाओं की कुंठा रूपी आग में तेल का काम करती हैं। व्यावसायिक शिक्षा, कौशल विकास और विनिर्माण क्षेत्र के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है, जहां इतनी बड़ी युवा आबादी को रोज़गार दिया जा सके। ग्रामीण आबादी पहले से ही जर्जर हो चुके कृषि क्षेत्र पर फंसी हुई है और युवा आबादी काम के अभाव में अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र में जूझ रही है। ग़रीबी में इजाफा करने का इससे बेहतर दूसरा कोई उपाय नहीं हो सकता है।

विकास, ग़रीबी और बेरोज़गारी की हक़ीक़त के साथ आज भारतीय अर्थव्यवस्था निर्णायक मोड़ पर खड़ी है। 2002 से 2009 के बीच हासिल की गई विकास दर की एक बड़ी वजह कमोडिटी क़ीमतों में आई गिरावट के चलते वैश्विक अर्थव्यवस्था में आया बूम था। 2008 की आर्थिक मंदी के बाद से वैश्विक अर्थव्यवस्था में आ रही गिरावट ने वह बूम दौर खत्म कर दिया है और इसी के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था की चमक कम हुई है। भारतीय विकास की कहानी सेवा क्षेत्र पर टिकी हुई है, सेवा क्षेत्र आईटी कंपनियों पर टिका हुआ है और आईटी कंपनियों का सबसे बड़ा बाजार अमरीका-यूरोप हैं। अमरीका आर्थिक मंदी से बाहर नहीं निकल पा रहा है और यूरोप पिग्स (पुर्तगाल, ग्रीस, इटली और स्पेन) देशों के कर्ज़ संकट के कारण मुसीबत में फंसा हुआ है। मतलब जिन वजहों से भारत ने बीते एक दशक में ऊंची विकास दर हासिल की थी, वह अब खत्म हो चुकी हैं और इसी के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था भी वापस अपने पुराने स्तर यानी पांच फीसदी की विकास दर के दायरे में लौट चुकी है।

अगर अर्थव्यवस्था को ऊंची विकास दर के स्थायी रास्ते पर लाना है और विकास का फल सब लोगों तक पहुंचाना है तो समावेशी ऊंची विकास दर के लिए हमें आधारभूत चीजों की तरफ लौटना होगा। अगर देश के आधे बच्चे कुपोषण का शिकार होंगे तो ऐसे आधी क्षमता से काम करने वाले युवाओं के सहारे हम नये भारत का निर्माण नहीं कर सकते हैं। आप चाहें तो देश में बढ़ते अपराध, अपराधों में शिक्षित-अशिक्षित युवा आबादी की हिस्सेदारी, नक्सलवाद, किसानों की आत्महत्या और ग़रीबी जैसी विकराल समस्याओं को अलग-अलग करके देख सकते हैं मगर हक़ीक़त में सारी बीमारियों की जड़ एक ही जगह है। यह विश्वास करने की कोई वजह नहीं है कि अगर एक ग़रीब युवा को उसकी काबिलियत के अनुसार शिक्षा या व्यावसायिक कौशल प्रशिक्षण देकर रोज़गार दे दिया जाए तो ग़रीबी और बेरोज़गारी को खत्म नहीं किया सकता। समय हमारे पास बिल्कुल नहीं है क्योंकि दिन-ब-दिन युवा आबादी की तादाद बढ़ती जा रही है और भारतीय लोकतंत्र के लंबे जीवन के लिए इस युवा आबादी को भीड़ में तब्दील करने की बजाय प्रशिक्षित युवा कामगारों में बदलना ही होगा। देश को युवा भीड़ के रूप में टाइम बम चाहिए या काबिल वर्कफोर्स, फ़ैसला हमारे नीति-निर्माताओं को करना है। ❑

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार हैं।
ई-मेल : sarvindna@gmail.com)

विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार की प्रवृत्तियां

● बिस्वनाथ गोलदार

1991 में भारत में आर्थिक सुधार प्रारंभ किए जाने के समय ये उम्मीद की जा रही थी कि आर्थिक सुधारों से विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार के अवसरों को बढ़ावा मिलेगा। यह माना जा रहा था कि भारत की स्थिति के सापेक्षिक लाभों को देखते हुए आर्थिक सुधारों, विशेषकर व्यापार सुधारों से उद्योग के ढांचे में बदलाव आएगा, जिससे उसे श्रम बहुल बनाने में मदद मिलेगी और इस तरह रोज़गार के अवसर पैदा होंगे। ये उम्मीद भी की जा रही थी कि आर्थिक सुधारों से भारतीय विनिर्माण क्षेत्र का तेज़ी से विकास होगा और इस क्षेत्र में रोज़गार सृजन पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा।

किंतु, रोज़गार सृजन के वास्तविक अनुभव इन उम्मीदों को पूरा नहीं कर पाए। सुधार परवर्ती अवधि में विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार की औसत वार्षिक वृद्धि दर, सुधारों से पूर्ववर्ती 10-15 वर्षों की अवधि की वृद्धि दर को पार नहीं कर पाई। 1977-78 और 1993-94 की अवधि में विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार वृद्धि दर करीब 2.7 प्रतिशत वार्षिक थी। सुधार परवर्ती अवधि में 1993-94 और 2011-12 के दौरान विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार वृद्धि की दर 2.4 प्रतिशत वार्षिक रही, जो 1977-78 और 1993-94 की अवधि से भी कम थी।

भारत में आर्थिक सुधार प्रारंभ होने के कुछ समय बाद ही विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार वृद्धि दर न बढ़ पाने का एक कारण यह रहा कि आर्थिक सुधारों से केवल विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन में वृद्धि हुई, 1976-77 से 1990-91 की अवधि में विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन में औसत वार्षिक वृद्धि दर (सतत् मूल्यों पर सकल मूल्य वृद्धि) करीब 5.8 प्रतिशत थी। 2002-03 से विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन की वृद्धि दर में तेज़ी से बढ़ोतरी दर्ज़ हुई। 2002-03 से 2011-12 की अवधि में विनिर्माण क्षेत्र की औसत वार्षिक वृद्धि दर 8.3 प्रतिशत थी। विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादन में इस बढ़ोतरी का असर विनिर्माण में रोज़गार के अवसरों में वृद्धि पर भी पड़ा। 1993-94 और 1999-00 के बीच विनिर्माण में रोज़गार की वृद्धि दर 1.6 प्रतिवर्ष थी (सुधार परवर्ती अवधि से अत्यंत नीचे), जो 1999-00 और 2011-12 में बढ़ कर 2.8 प्रतिशत हो गई।

सुधार परवर्ती अवधि में विनिर्माण रोज़गार की वृद्धि दर में बढ़ोतरी न होने का एक अन्य कारण यह भी रहा कि ऐसे प्रत्याशित ढांचागत बदलाव नहीं हो पाए जिनसे उद्योगों को श्रम बहुल बनाया जा सकता। टेक्सटाइल्स और टेक्सटाइल उत्पादों, तथा चमड़ा और चमड़ा उत्पादों के मामले में यह तथ्य विचारणीय है। ये दोनों महत्वपूर्ण श्रम बहुल निर्यात उद्योग हैं। भारत के निर्यात में इनकी हिस्सेदारी 1990-91 में 32 प्रतिशत थी। 2011-12 में यह हिस्सेदारी घट कर 11 प्रतिशत रह गई। स्पष्ट है कि निर्यात का ढांचा श्रम बहुल उत्पादों के पक्ष में परिवर्तित नहीं हुआ। विनिर्माण क्षेत्र में वास्तविक मूल्य वृद्धि में इन दो उद्योगों की हिस्सेदारी 2011-12 में घट कर 13.6 प्रतिशत रह गई जबकि 1990-91 में यह 16.6 प्रतिशत थी। यह भी देखा गया कि ये दो श्रम बहुल उद्योग भारतीय विनिर्माण क्षेत्र में अधिक महत्व अर्जित नहीं कर पाए।

भारतीय विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार वृद्धि को बेहतर ढंग से समझने के लिए विनिर्माण के संगठित और असंगठित क्षेत्रों में रोज़गार प्रवृत्तियों पर अलग-अलग विचार करना उपयोगी होगा। विनिर्माण के संगठित क्षेत्र के अंतर्गत फैक्टरी अधिनियम के अंतर्गत 'फैक्टरियों' के रूप में पंजीकृत औद्योगिक इकाईयां शामिल हैं। इनमें वे औद्योगिक इकाईयां आती हैं जिनमें बिजली के उपयोग के साथ 10 या उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं अथवा बिना बिजली के इस्तेमाल के 20 या उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। इस प्रकार विनिर्माण के संगठित (या पंजीकृत) क्षेत्र में अपेक्षाकृत बड़ी इकाईयां हैं। विनिर्माण के कुल रोज़गार में संगठित क्षेत्र का योगदान फिलहाल करीब एक चौथाई है और विनिर्माण उत्पादन (सकल मूल्य संवर्धित) में इस क्षेत्र की हिस्सेदारी करीब 70 प्रतिशत है। इसके बावजूद विनिर्माण रोज़गार में संगठित क्षेत्र की हिस्सेदारी केवल करीब चौथाई है। यह रोज़गार सृजन का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि असंगठित क्षेत्र की तुलना में संगठित क्षेत्र में उत्पादकता एवं दिहाड़ी का स्तर अधिक ऊंचा है। शानदार रोज़गार के प्रावधान के संदर्भ में भी असंगठित विनिर्माण क्षेत्र की तुलना में संगठित विनिर्माण क्षेत्र की स्थिति बेहतर है। संगठित और असंगठित विनिर्माण क्षेत्रों में रोज़गार की प्रवृत्तियों पर आगामी पंक्तियों में क्रमबद्ध रूप से विचार किया गया है।

संगठित विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार

पिछले पांच दशकों से भारत के संगठित विनिर्माण में नए रोज़गार सृजन और रोज़गार रहित वृद्धि के वैकल्पिक चरण दृष्टिगत होते हैं। 1960 के दशक और 1970 के दशक में संगठित विनिर्माण के अंतर्गत रोज़गार के अवसरों में महत्वपूर्ण इजाफा हुआ और इस क्षेत्र में रोज़गार की औसत वृद्धि दर हर वर्ष करीब 4 प्रतिशत रही। 1980-81 और 1990-91 के बीच संगठित विनिर्माण क्षेत्र

का उत्पादन हर वर्ष 8.3 प्रतिशत की दर से बढ़ा जबकि इस अवधि में संगठित विनिर्माण में रोज़गार वृद्धि अत्यंत धीमी गति से हुई जो केवल 0.4 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। आर्थिक सुधारों के बाद के तात्कालिक वर्षों में संगठित विनिर्माण में रोज़गार के अवसरों में कुछ इजाफा हुआ। 1990-91 से 1997-98 की अवधि में संगठित विनिर्माण में रोज़गार के अवसर करीब 19 प्रतिशत बढ़े। वार्षिक वृद्धि दर करीब 2.5 प्रतिशत रही लेकिन, परवर्ती वर्षों में संगठित विनिर्माण में रोज़गार वृद्धि की धीमी प्रवृत्ति दिखाई दी जो 2003-04 तक जारी रही। 1997-98 और 2003-04 के बीच संगठित विनिर्माण में रोज़गार के अवसरों में करीब 10 प्रतिशत गिरावट आई। 1997-98 से 2003-04 के दौरान रोज़गार में जो कमी दर्ज़ हुई उसकी भरपाई कुछ हद तक 1992-93, 1994-95 और 1995-96 के दौरान रोज़गार के अवसरों में हुई बढ़ोतरी से हो सकी। परिणाम स्वरूप, 1990-91 से 2003-04 की अवधि में संगठित विनिर्माण में रोज़गार वृद्धि की औसत दर मात्र करीब 0.6 प्रतिशत वार्षिक थी। अगर आप दीर्घावधि की बात करें, तो 1990-91 से 2003-04 के दौरान 24 वर्षों की अवधि में संगठित विनिर्माण में रोज़गार की औसत वृद्धि दर और भी कम करीब 0.5 प्रतिवर्ष थी। दिलचस्प बात है कि उसके बाद से स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन आया। 2003-04 के बाद से संगठित विनिर्माण में रोज़गार की दर तेज़ी से बढ़ी और करीब 7 प्रतिशत वार्षिक पर पहुंच गई, जो 1960 और 1970 के दशकों में हासिल की गई रोज़गार वृद्धि दर से भी ऊपर थी।

सैद्धांतिक दृष्टि से तर्क दिया जा सकता है कि व्यापार उदारीकरण से निर्यात और आयात की जाने वाली वस्तुओं के संघटन में बदलाव आएगा जिससे विनिर्माण क्षेत्र का ढांचा श्रम बहुल बनाने में मदद मिलेगी। किंतु, संगठित विनिर्माण में ऐसा परिवर्तन वास्तव में दिखाई नहीं दिया। कुछ उद्योग समूहों, जैसे खाद्य, पेय पदार्थ और तम्बाकू, टेक्सटाइल और टेक्सटाइल उत्पाद, चमड़ा और चमड़ा उत्पाद, और वन और वन उत्पाद, को श्रम बहुल माना जाता है। इन क्षेत्रों के अंतर्गत संगठित विनिर्माण के समग्र संवर्धित मूल्य में 1990-91 (2004-05 के मूल्यों के अनुसार) में करीब 22 प्रतिशत वृद्धि हुई। 2004-05 में संवर्धित मूल्य में उनकी हिस्सेदारी घट कर करीब 18 प्रतिशत रह गई। इसके विपरीत कुछ अन्य उद्योग समूहों जैसे रसायन एवं रासायनिक उत्पादों, रबड़, प्लास्टिक और पैट्रोलियम उत्पादों तथा बुनियादी धातुओं का योगदान संगठित विनिर्माण के संवर्धित मूल्य में 1990-91 (2004-05 के मूल्यों पर) में करीब 47 प्रतिशत था, जो 2004-05 में बढ़कर 48 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार स्पष्ट है कि श्रम बहुल उद्योगों की सापेक्षिक हिस्सेदारी में गिरावट आई है और परंपरागत आर्थिक सिद्धांत के पूर्वानुमान के विपरीत संगठित विनिर्माण के भीतर पूंजी बहुल उद्योगों के योगदान में मामूली बढ़ोतरी हुई है। इसका यह अर्थ नहीं है कि सिद्धांत गलत है। यह सैद्धांतिक पूर्वानुमान कि व्यापार उदारीकरण से श्रम बहुल उद्योगों को बढ़ावा मिलेगा, निर्णायक दृष्टि से पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक बाजारों की धारणा पर आधारित है। यदि प्रतिस्पर्धा अपूर्ण होगी तो व्यापार उदारीकरण पूंजी बहुल प्रतिस्पर्धात्मक आयात को कम करने में योगदान नहीं कर सकेगा।

एक दिलचस्प सवाल है कि संगठित विनिर्माण क्षेत्र में 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से हाल में हुई रोज़गार वृद्धि क्या श्रम बहुल उद्योगों की दिशा में ढांचागत बदलाव का परिणाम है। संगठित (पंजीकृत) विनिर्माण उद्योगों में वास्तविक सकल संवर्धित मूल्य के बारे में राष्ट्रीय लेखा आंकड़ों के एक विश्लेषण से पता चलता है कि खाद्य उत्पादों, पेय पदार्थों, तम्बाकू उत्पादों, टेक्सटाइल, चमड़ा और चमड़ा उत्पादों तथा वन और वन उत्पादों जैसे श्रम बहुल उद्योगों की सापेक्षिक हिस्सेदारी में 2004-05 से कोई महत्वपूर्ण बढ़ोतरी नहीं हुई है। इस प्रकार रोज़गार में वृद्धि की परिणति श्रम बहुल उद्योगों की दिशा में किसी संरचनागत बदलाव की ओर इंगित नहीं करती। तत्संबंधी स्पष्टीकरण किन्हीं अन्य बातों में सन्निहित है।

श्रम बाजार विनियमों की भूमिका

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट (इंडियाज़ एम्प्लायमेंट चैलेंज : क्रिएटिंग जॉब्स, हैल्पिंग वर्कर्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2010) में कहा गया है कि औपचारिक विनिर्माण श्रम बाज़ार में अत्यधिक कठोरता लागू करने से श्रम कानून के कारण नियोक्ता रोज़गार के अवसर पैदा करने के प्रति हतोत्साहित हुए हैं। रिपोर्ट में एक अनुमान व्यक्त किया गया है जिसके अनुसार औद्योगिक विवाद अधिनियम के कारण औपचारिक विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार के करीब 30 लाख अवसर कम हुए हैं। यह अनुमान 1959 से 1997 की अवधि संबंधी आंकड़ों के विश्लेषण पर आधारित है। 1997 में विनिर्माण के औपचारिक या संगठित क्षेत्र में रोज़गार के करीब 90 लाख अवसर पैदा हुए। अगर रोज़गार के 30 लाख अवसर समाप्त न होते तो यह संख्या 1.2 करोड़ होती। इस प्रकार विश्व बैंक के अध्ययन में लगाए गए अनुमानों के अनुसार औद्योगिक विवाद अधिनियम की वजह से संगठित विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार के अवसरों में करीब 25 प्रतिशत कमी आई है।

इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि भारत में श्रम विनियमों संबंधी एक साहित्यिक निकाय है, जिसका यह मानना है कि कई भारतीय राज्यों में श्रम कानूनों के प्रवर्तन के प्रावधान में रियायतें दी गई हैं जिनसे जमीनी स्तर पर लचीली पद्धतियां अपनाई गई हैं। कई भारतीय राज्यों द्वारा श्रम कानूनों को लागू करने के प्रावधानों में ढील देने से जमीनी स्तर पर लचीली पद्धतियां अपनाए जाने की धारणा को इस बात से बल मिलता है कि हाल के वर्षों में संगठित विनिर्माण के क्षेत्र में रोज़गार के अवसर तीव्र गति से बढ़े हैं। इस लेखक के एक अन्य आलेख में कुछ अनुभविक साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं जिनमें हाल के वर्षों में रोज़गार की स्थिति में अंतर-राज्यीय तुलना के अंतर्गत कुछ हद तक श्रम बाज़ार सुधारों की तरफ रचनात्मक झुकाव देखा गया है। यह निष्कर्ष इस धारणा का समर्थन करते हैं कि संगठित विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार के अवसरों में हाल में हुई बढ़ोतरी का संबंध कुछ हद तक भारतीय राज्यों द्वारा औद्योगिक श्रम बाज़ारों में अपनाए गए लचीलेपन के साथ है।

संगठित विनिर्माण के क्षेत्र में रोज़गार सृजन की मात्रा को प्रभावित करने के साथ ही श्रम बाज़ार कानूनों का प्रभाव रोज़गार की गुणवत्ता पर भी पड़ा है। संगठित विनिर्माण क्षेत्र में अनुबंध श्रम का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है। संगठित विनिर्माण क्षेत्र में अनुबंध श्रमिकों की संख्या 1995-96 में 14 प्रतिशत थी जो 2007-08 में बढ़कर 31 प्रतिशत

और 2010-11 में बढ़कर 34 प्रतिशत हो गई। यह माना जाता है कि अनुबंध श्रम का इस्तेमाल श्रम विनियमों, विशेषकर औद्योगिक विवाद अधिनियम (आईडीए), से छुटकारे का माध्यम है और भारत में औद्योगिक प्रतिष्ठान इस माध्यम को वास्तव में व्यापक रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। कुछ अर्थमितीय अध्ययनों से आनुभविक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं जिनसे पता चलता है कि कड़े श्रम कानूनों की वजह से भारतीय औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अनुबंधात्मक श्रमिकों का इस्तेमाल अधिक किया जा रहा है। यहां यह प्रश्न स्वत: उठता है कि भारत के संगठित विनिर्माण क्षेत्र में अनुबंधात्मक श्रम का इस्तेमाल क्यों जारी है जबकि कई भारतीय राज्यों ने श्रम कानूनों के प्रवर्तन के प्रावधानों में रियायतें दी हैं और जमीनी स्तर पर वहां लचीली पद्धतियां अपनाई जा रही हैं। संभवत: कुछ अन्य घटक हैं, जो भारतीय उद्योगों में अनुबंधात्मक श्रम के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करते हैं।

असंगठित विनिर्माण क्षेत्र

असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के अंतर्गत रोज़गार के अवसरों में 1977-78 और 1999-00 की अवधि में करीब 3 प्रतिशत की दर से इजाफा हुआ। असंगठित विनिर्माण में रोज़गार सृजन की गति पर इस सदी के पहले दशक में कुछ हद तक आघात पहुंचा। असंगठित विनिर्माण उद्यमों के बारे में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय द्वारा कराए गए सर्वेक्षण के आधार पर लगाए गए रोज़गार संबंधी अनुमानों के अनुसार 2000-01 और 2010-11 के बीच असंगठित विनिर्माण क्षेत्र में कार्मिकों की संख्या में प्रति वर्ष 0.6 प्रतिशत की कमी आई। इन आंकड़ों पर ध्यान से देखने पर पता चलता है कि ऐसी इकाइयां जिनमें परिवार के सदस्य काम करते हैं और बाहर से कोई श्रमिक नहीं लगाया जाता है उनकी स्थिति दिहाड़ी पर श्रमिक रखने वाली इकाइयों से अलग थी। 2000-01 और 2010-11 के बीच असंगठित क्षेत्र के विनिर्माण प्रतिष्ठानों में रोज़गार में प्रति वर्ष 1.6 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई, जबकि स्व-खाता विनिर्माण उद्यमों में रोज़गार में प्रति वर्ष 1.8 प्रतिशत की दर से कमी आई।

असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के अंतर्गत स्व-खाता उद्यमों में 2000-01 और 2010-11 के बीच न केवल रोज़गार में कमी आई बल्कि उद्यमों (स्थापित) की संख्या में भी कमी आई। असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के अंतर्गत स्व-खाता उद्यमों की संख्या 2000-01 में करीब 146.7 लाख थी जो 2010-11 में घट कर करीब 144.3 लाख रह गई। दूसरी तरफ असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के अंतर्गत प्रतिष्ठानों की संख्या इस अवधि में 23.5 लाख से बढ़कर 27.8 लाख हो गई। दिलचस्प बात है कि स्व-खाता उद्यमों में ग्रामीण क्षेत्र में कमी आई (इकाइयों की संख्या 2000 में 111 लाख थी जो 2010 में घट कर 91 लाख रह गई) (जबकि शहरी क्षेत्रों में इनकी संख्या में इजाफा हुआ जो 36.1 लाख से बढ़कर 59.2 लाख हो गई)। असंगठित विनिर्माण क्षेत्र के अंतर्गत पिछले दशक में एक तरह का पुनर्गठन दिखाई देता है, जिसके अंतर्गत स्व-खाता ग्रामीण उद्यमों की बजाय प्रतिष्ठानों और शहरी स्व-खाता उद्यमों का अधिक विकास हुआ है। इससे, श्रम उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिली है।

आगे का रास्ता

वास्तव में, सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में समग्र योगदान और समग्र रोज़गार की दृष्टि से विनिर्माण क्षेत्र में लंबी अवधि से एक गतिरोध बना हुआ है। 2011-12 में समग्र जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र का योगदान करीब 16 प्रतिशत था और समग्र रोज़गार में यह हिस्सेदारी करीब 13 प्रतिशत थी। सेवा क्षेत्र का तेज़ी से विकास हुआ है और जीडीपी में इसकी हिस्सेदारी बढ़ी है। 2011-12 में समग्र जीडीपी में सेवा क्षेत्र का योगदान करीब 58 प्रतिशत था। किंतु, अगले 10 वर्षों में श्रम बाज़ार में प्रवेश करने वाले युवाओं के लिए रोज़गार के प्रचुर अवसर पैदा करने की दृष्टि से सेवा क्षेत्र पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। सेवाओं, विशेषकर आधुनिक सेवाओं में श्रमिकों की कौशल संबंधी जरूरतें, विनिर्माण क्षेत्र के श्रमिकों की जरूरतों की तुलना में अधिक होती हैं। इस प्रकार कम शिक्षित और अशिक्षित युवाओं के लिए अगले 10 वर्षों में रोज़गार के प्रचुर अवसर उपलब्ध कराने के लिए विनिर्माण क्षेत्र का तेज़ी से विकास करना अनिवार्य है। नई राष्ट्रीय विनिर्माण नीति का लक्ष्य भारतीय विनिर्माण क्षेत्र का तेज़ी से विकास करना है ताकि समग्र जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाकर अगले 10 वर्ष या कुछ अधिक समय में 25 प्रतिशत की जा सके। सरकार के इस प्रयास से आने वाले वर्षों में विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार के अवसरों में पर्याप्त बढ़ोतरी होने की संभावना है। ❑

(लेखक इंस्टीट्यूट ऑफ इकोनोमिक ग्रोथ, दिल्ली में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर हैं।
ई-मेल : b_gddar@yahoo.com)

योजना

आगामी अंक

नवंबर 2013

भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन

दिसंबर 2013

खाद्य सुरक्षा का अधिकार

आर्थिक संवृद्धि, रोज़गार और दरिद्रता निवारण

● गिरीश मिश्र

अर्थशास्त्र में दो शब्द हैं : 'ग्रोथ' (संवृद्धि) और 'डेवलपमेंट (विकास) जो एक-दूसरे के पर्यायवाची नहीं हैं। उनके निहितार्थ भिन्न हैं। इकॉनोमिक ग्रोथ या आर्थिक संवृद्धि का अर्थ है : 'किसी राष्ट्र विशेष द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में निरंतर वृद्धि। आमतौर पर इसे 'सकल घरेलू उत्पाद' (जीडीपी) या 'सकल राष्ट्रीय आय' की बढ़ोतरी के रूप में व्यक्त किया जाता है। यदि यह बढ़ोतरी आठ प्रतिशत वार्षिक है तो आर्थिक संवृद्धि की वार्षिक दर आठ प्रतिशत होगी। यहां इस बात से कोई सरोकार नहीं होता कि उत्पादित वस्तुएं और सेवाएं आम आदमी या समाज के बहुसंख्यक लोगों की ज़रूरतों को पूरा करती हैं या नहीं। मसलन जुए को लें। जहां वह वैध है वहां आर्थिक संवृद्धि में उसका योगदान शामिल किया जाता है। यदि हमारे यहां क्रिकेट को लेकर होने वाली सट्टेबाजी को वैध घोषित कर दिया जाए तो उसका योगदान आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाएगा। यदि स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति पर्याप्त न हो तो लोगों को तरह-तरह के उपकरणों के जरिये पानी को स्वच्छ बनाना पड़ेगा। इन उपकरणों के उत्पादन उनको लगाने तथा रख-रखाव के परिणामस्वरूप आर्थिक संवृद्धि बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि सार्वजनिक परिवहन पर्याप्त विश्वसनीय और आरामदेह न हो तो लोग निजी वाहनों की मांग करेंगे जिससे उनका उत्पादन बढ़ेगा, ईंधन की खपत बढ़ेगी, ड्राईवरों को रोज़गार के अवसर मिलेंगे और सड़कों का विस्तार होगा। स्पष्टतया आर्थिक संवृद्धि की दर बढ़ेगी। यहां इस बात से कुछ लेना-देना नहीं है कि संसाधनों का इस्तेमाल कैसे हो रहा है।

यदि हम नज़र दौड़ाए तो पाएंगे कि संसार के कई देशों की राष्ट्रीय आय और परिणामत: आर्थिक संवृद्धि दर में इसलिए इज़ाफा हुआ है कि वहां उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन की मांग और कीमत तेज़ी से बढ़ी है। याद रहे कि आर्थिक संवृद्धि की ऊंची दर का यह मतलब कतई नहीं होता कि आम लोग अवश्यंभावी रूप से सुखी हैं और उनकी सत्ता में भागीदारी होने से जनतांत्रिक विचार और दृष्टिकोण पनपेंगे। उदाहरणार्थ तेल एवं खनिज पदार्थों के कई निर्यातक देशों में आर्थिक संवृद्धि की दर ऊंची है मगर इससे वहां समाज के ऊपरी पायदानों पर बैठे लोग ही मुख्यतया लाभान्वित हुए हैं। वहां न सच्चा संसदीय जनतंत्र है और न ही आधुनिक जीवन दृष्टि। स्त्री-पुरुष के बीच समानता नहीं है और दंड संहिता मध्यकालीन है। स्पष्टतया केवल आर्थिक संवृद्धि की दर बढ़ने से न आम लोगों का कल्याण हो सकता है और न ही सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य आधुनिक बन सकते हैं।

आर्थिक विकास की अवधारणा आर्थिक संवृद्धि की अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक है। उसमें आर्थिक संवृद्धि के साथ ही वे तकनीकी और सांस्थानिक परिवर्तन भी शामिल होते हैं जिनसे वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बढ़ता है यानी आर्थिक संवृद्धि की दर बढ़ती है। आर्थिक संवृद्धि के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं हो सकता फिर यह भी आवश्यक नहीं है कि अल्पकाल में आर्थिक संवृद्धि के साथ आर्थिक विकास निश्चित ही हो। कहना न होगा कि आर्थिक विकास तभी संभव है जब आर्थिक संवृद्धि के फल का वितरण और आर्थिक ढांचागत परिवर्तन सामान्य जन के जीवनस्तर को ऊपर उठाएं।

स्पष्टतया, समाज के निचले तबकों की स्थिति में सुधार, सकल घरेलू उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्र के सापेक्ष योगदान में कमी और औद्योगिक एवं सेवाओं के क्षेत्रों के योगदान में अपेक्षाकृत वृद्धि, उत्पादन के तौर-तरीकों में परिवर्तन, शिक्षा के स्तर और श्रमशक्ति के कौशल में तेज़ी से सुधार, जीवन मूल्यों की संकीर्णता से मुक्ति और जनतंत्र का बोलबाला आर्थिक विकास के साथ अपरिहार्य रूप से जुड़े होते हैं। यहां पर प्रख्यात अर्थशास्त्री दिवंगत डडले सीयर्स के निम्नलिखित कथन को उद्धृत करना मौजू रहेगा। 'ग़रीबी का क्या हो रहा है? बेरोज़गारी का क्या हो रहा है? असमानता का क्या हो रहा है? अगर ये तीनों पहले से कम उग्र हुई हैं तो निस्संदेह देश विशेष में आर्थिक विकास हुआ है। ये तीनों या इनमें से एक या दो उग्रतर हुई हैं तो स्थिति को विकास नहीं कहा जा सकता, भले ही प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई हो।'

याद रहे कि हर स्थिति में आर्थिक संवृद्धि के परिणामस्वरूप रोज़गार के अवसर अवश्यंभावी रूप से नहीं बढ़ते। रोज़गार विहीन आर्थिक संवृद्धि भी हो सकती है। हमने देखा है कि आए दिन कारखानों में स्वचालित मशीनें आने से मज़दूरों की संख्या कम होती है यद्यपि उत्पादन बढ़ जाता है। हमने यह भी देखा है कि बैंकों में कंप्यूटर और एटीएम लगने से उत्पादन बढ़ता है मगर कर्मियों की संख्या घटती है। दूसरे शब्दों में आर्थिक संवृद्धि के बावजूद रोज़गार के अवसर घटते हैं और बेरोज़गारी की स्थिति उग्रतर हो जाती है। ऐसी स्थिति को आर्थिक विकास कहना ठीक नहीं होगा।

याद रहे कि आर्थिक संवृद्धि तभी आर्थिक विकास की ओर ले जा सकती है जब लोगों का सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण तथा जीवन मूल्य उदार हों। हमने कई बार पाया है कि राज्य या देश विशेष की आर्थिक संवृद्धि की दर लगातार ऊंची रहने के बावजूद बेरोज़गारी और आर्थिक विषमता बढ़ी है और जीवन मूल्यों में ह्रास हुआ है। हिटलर कालीन जर्मनी को हम उदाहरणस्वरूप ले सकते हैं। वहां कट्टरता और यहूदियों के प्रति संकुचित

दृष्टिकोण बढ़ा। वहां औपचारिक तौर पर तो जनतंत्र था मगर सत्ता पर वे लोग काबिज थे जिनका जनतांत्रिक मूल्यों से कोई लेना-देना न था। इन प्रश्नों को लेकर हारवर्ड विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्री प्रो. बेंजामिन फ्रीडमैन ने अपनी पुस्तक 'द मोरल कांसिक्वेंसेज ऑफ इकॉनामिक ग्रोथ' के जरिये बहस आरंभ की। उनके अनुसार जब कहा जाता है कि आर्थिक संवृद्धि हमारे लिए महत्वपूर्ण है तब हमारे शब्द की स्पष्ट परिभाषा आवश्यक है। क्या इसके अंतर्गत बहुसंख्यक जनता आती है जिसकी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने को प्राथमिकता दी जाती है? इस संदर्भ में चार बातें महत्वपूर्ण हैं। पहली, आर्थिक संवृद्धि के स्वरूप के निर्णय की कसौटी आम आदमी को बनानी चाहिए। उसके जीवनस्तर में सुधार हो और उसे अहसास हो कि उसकी हालत बेहतर हो रही है। दूसरी, यदि आर्थिक संवृद्धि के फलस्वरूप आमलोगों की स्थिति बेहतर होने के साथ उनका दृष्टिकोण अन्य देशों और प्रदेशों के निवासियों के प्रति मैत्रीपूर्ण हो और धार्मिक कठमुल्लापन, संप्रदायवाद और अंधविश्वास कम हो तो आर्थिक संवृद्धि निश्चित रूप से स्वागत योग्य है। हम अपने देश में अल्पसंख्यकों, दलितों आदि के प्रति दृष्टिकोण और अंतर्जातीय विवाह के प्रति रुख के साथ ही तंत्र-मंत्र एवं अन्य अंधविश्वासों के संदर्भ में आर्थिक संवृद्धि के चरित्र और स्वरूप को परख सकते हैं।

तीसरी बात आर्थिक नीति से जुड़ी है। उसका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि क्या, कैसे और किनके लिए उत्पादन का फैसला आमजन के हितों को सर्वोपरि रखकर हो, न कि केवल बाज़ार की शक्तियों और अधिकतम मुनाफा प्राप्त करने के उद्देश्य को प्राथमिकता देकर। चौथी बात है कि पर्यावरण पर आर्थिक संवृद्धि का क्या असर होता है। यहां पर सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। उसे समाज के हित में बाज़ार की शक्तियों और आर्थिक संवृद्धि के स्वरूप और चरित्र को नियंत्रित कर सही दिशा में जाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

आर्थिक संवृद्धि से जुड़े विमर्श में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले नोबेल पुरस्कार से सम्मानित दो अर्थशास्त्रियों साइमन कुज्नेत्स और आर्थर लिविस ने स्वीकार किया है कि आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया को बेलगाम छोड़ देने से समाज में आर्थिक विषमता का बढ़ना अवश्यंभावी है। यदि यहां सरकार ने हस्तक्षेप नहीं किया तो जनतंत्र के लिए गंभीर ख़तरे पैदा हो जाएंगे।

जहां तक भारत का संबंध है, आज़ादी की लड़ाई के जमाने से ही यह महसूस किया जाता रहा है कि उसके लिए समावेशी विकास अपरिहार्य है। देश की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि आर्थिक, सामाजिक एवं क्षेत्रीय विषमताओं और असंतुलन को मिटाने की दिशा में प्रयास किए जाएं। याद रहे कि विदेशी शासन के दौरान आधुनिक उद्योग कुछ क्षेत्रों विशेषकर तटीय इलाकों में ही स्थापित किए गए। कई इलाकों के साथ राजनीतिक कारणों से भेदभाव किए गए। राष्ट्रीय नेताओं ने महसूस किया कि यदि इस स्थिति को पलटा नहीं गया तो भारत को सूत्रबद्ध करना अत्यंत कठिन होगा और इस कारण आज़ादी सुरक्षित नहीं रह पाएगी।

यह चिंता आज़ादी के बाद बने कार्यक्रमों में स्पष्ट रूप से दिखी। पंचवर्षीय योजनाओं और औद्योगिक नीति के प्रस्तावों में पिछड़े इलाकों के त्वरित विकास पर विशेष रूप से ज़ोर दिया गया। अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण तथा आर्थिक सहायता के प्रावधान किए गए। कहना न होगा कि समावेशी विकास की अवधारणा को कार्यान्वित करने के क्रम में कई प्रकार की कठिनाइयां भी आईं। विकास के परिणामों को विभिन्न सामाजिक वर्गों और समुदायों तथा क्षेत्रों के बीच न्यायोचित रूप से वितरित करना आसान न था।

भारत की अधिकतर जनसंख्या कृषि और उससे जुड़े कार्यकलापों में लगी रही है। इसके अनुपात में कालक्रम में कमी आई है फिर भी आज लगभग 50 प्रतिशत कुल जनसंख्या उनमें कार्यरत हैं। करीब दो चौथाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान आर्थिक संवृद्धि दर विशेषकर कृषि संवृद्धि दर में गिरावट से इस जनसंख्या की क्रयशक्ति घटी है और बेरोज़गारी की समस्या का सामना करना पड़ा है। गांवों से जनसंख्या का पलायन शहरों की ओर हो रहा है जिससे कई अन्य समस्याएं उत्पन्न होती हैं। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2011-12 में 21.9 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा के नीचे थी। दूसरे शब्दों में आज भी कुल जनसंख्या का पांचवां भाग गरीबी रेखा के नीचे हैं। यह स्थिति वर्ष 2003-04 से गरीबी की दर में निरंतर गिरावट के बाद है।

स्थिति से निबटने के लिए सरकार ने दो महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। पहला कदम है मनरेगा के तहत निश्चित मजदूरी दर पर इच्छुक श्रमजीवियों को निर्धारित कार्य दिवसों के लिए रोज़गार के अवसर उपलब्ध कराना। कतिपय खामियों के बावजूद गांवों से मजदूरों का पलायन कम हुआ है और श्रमजीवियों की आय बढ़ी है। साथ ही कतिपय प्रकार की परिसंपत्तियों का सृजन संभव हो सका है। शहरों तथा अन्यत्र कार्यरत मजदूरों की मोल-भाव करने की शक्ति बढ़ी है।

सरकार का दूसरा महत्वपूर्ण कदम है: भोजन की गारंटी का अधिकार। यह कानून अभी-अभी पारित हुआ है। इसके तहत देश के अधिकतर जरूरतमंद लोगों को सस्ती दरों पर चावल, गेहूं तथा कतिपय अन्य मोटे अनाज मिल सकेंगे। भरपूर भोजन प्राप्त होने से उनके स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा तथा खर्च करने योग्य उपज में इजाफा होने से वे दूसरी आवश्यक वस्तुओं को खरीद सकेंगे।

पिछले कुछ दशकों के दौरान आर्थिक संवृद्धि दर में वृद्धि, उसका समावेशी होना, रोज़गार की संरचना में अनुकूल बदलाव और मज़दूरी की दर में बढ़ोतरी से गरीबी का असर पहले से कम हुआ है। यह कमी सबसे अधिक ओडिशा, बिहार और राजस्थान में देखने में आई है। इधर सरकार का ज़ोर संवृद्धि की दर को ऊंचा उठाने पर रहा है जिससे श्रम शक्ति में शामिल होने वाले लाखों लोगों को सम्मान-जनक रोज़गार के अवसर मिल सकें। खेती से जुड़े कार्यों पर दबाव कम हो और मज़दूरी की दरें बढ़ें। सरकार का ज़ोर उपभोग के साथ-साथ बचत की दर को बढ़ाने पर भी रहा है जिससे पूंजी निर्माण की गति त्वरित हो।

आज भारत की जनसंख्या में सबसे बड़ा हिस्सा युवा वर्ग का है। यह वर्ग ऊर्जा और उपज से भरपूर है। कहना न होगा कि युवक-युवतियां जब दक्षता और कौशल प्राप्त वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में यथाशक्ति योगदान करने के उद्देश्य से आर्थिक जगत में

(शेषांश पृष्ठ 59 पर)

आर्थिक वृद्धि - भारतीय पथ

● सोना मित्रा

भारतीय वृद्धि मार्ग की दुनिया भर में सराहना हुई है क्योंकि पिछले एक दशक में देश में जीडीपी की औसत वृद्धिदर हर साल 6-8 फीसदी रही है लेकिन फिलहाल एक साल से भारत का यह सुहाना सफर कई घरेलू और अंतरराष्ट्रीय कारकों की वज़ह से धीमा पड़ गया है। वृद्धिदर में गिरावट के रुख के संदर्भ में कई विद्वान दलील देते हैं कि वैश्विक आर्थिक संकट के प्रति भारत के फिर से उठ खडे. होने की शक्ति खत्म हो गई है। दूसरी तरफ, देश में सरकार और नीति प्रतिष्ठान बयान जारी करते रहे हैं कि वृद्धिदर में गिरावट बस कुछ समय के लिए थी और उसकी दिशा फिर पलट जाएगी। भारत के संदर्भ में अपर्याप्त सुधार की दलील 1990 के दशक के प्रारंभिक दिनों से नीति और सफलता के क्षेत्र में हुए तीव्र आर्थिक सुधार के आलोक में बेबुनियाद है।

भारत की आर्थिक गाथा ने 2003-04 में तेज़ी पकड़ी। दिए गए पहले चित्र से यह साफ है कि आर्थिक सुधार के प्रारंभिक वर्षों में जीडीपी वृद्धिदर में उतार चढ़ाव आता रहा लेकिन भारत ने 2004-04 और 2007-08 के दौरान जीडीपी में असामान्य रूप से उच्च वृद्धिदर दर्ज की। 2005-08 के बीच वृद्धि दर 9 फीसदी तक पहुंच गई लेकिन 2008-09 में वैश्विक आर्थिक संकट के दौरान वृद्धिदर में आंशिक गिरावट आई और फिर 2009-10 में यह अपने शिखर पर पहुंच गई। दुर्भाग्य से यह वृद्धिदर नहीं बनी रह पाई और पहले जितनी वृद्धिदर थी वह 2011-12 में करीब करीब आधी रह गई।

जीडीपी की उच्च वृद्धिदर की अवधि में जीडीपी में सेवाक्षेत्र का बहुत बड़ा योगदान रहा (चित्र-2)। दूसरी तरफ, 1990 के दशक के प्रारंभ में विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धिदर 3-4 फीसदी सालाना थी और वह उच्च वृद्धिकाल में बढ़कर 7-8 फीसदी हो गई। जीडीपी का विनिर्माण का योगदान स्पष्ट ठहराव और 2010-11 के बाद गिरावट को भी दर्शाता है। भारतीय आर्थिक सर्वेक्षण 2012-13। जीडीपी में कृषि का योगदान नगण्य रहा जो इस क्षेत्र की निम्न वृद्धि में भी झलकता है। 2003-04 और 2008-09 के बीच वार्षिक औसत कृषि वृद्धिदर महज दो फीसदी रही। भारतीय आर्थिक सर्वेक्षण 2012-13। सुधार के शुरू होने पर नियोजन एवं नीतिगत बदलाव में कृषि क्षेत्र पर सार्वजनिक व्यय में गिरावट तथा उसके प्राथमिक क्षेत्र का दर्जा समाप्त होने के फलस्वरूप कृषि वृद्धि को एक झटका लगा।

जीडीपी में कृषि का योगदान नगण्य है लेकिन यह अब भी बहुसंख्य आबादी के लिए मुख्य कार्य बना हुआ है। रोज़गार और बेरोज़गारी पर नवीनतम राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 2011-12 के अनुमान दर्शाते हैं कि अब भी जितने लोगों को रोज़गार मिला हुआ है, उनमें 50 फीसदी कृषि क्षेत्र में लगे हुए हैं। जीडीपी के सबसे बड़े योगदानकर्ता सेवा क्षेत्र (राष्ट्रीय लेखा आंकड़े 2011-12 अनुमानित सीएसओ जीओआई के अनुसार लगभग 32 प्रतिशत) में बमुश्किल 11 फीसदी कार्यबल लगा हुआ है।

भारत में वृद्धि और रोज़गार लिंक

सेवा क्षेत्र में उभार वाली उच्च वृद्धि भारतीय वृद्धि गाथा की मुख्य विशेषता है लेकिन इस वृद्धिदर से रोज़गार सृजन हुआ या नहीं, उसे जानने के लिए हमें रोज़गार वृद्धि पैटर्न पर गहराई से विचार करने की जरूरत है। रोज़गार और बेरोज़गारी पर राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 2011-12 के नवीनतम आंकड़े बताते हैं कि संपूर्ण रोज़गार वृद्धि 1999-00/2004-05 की करीब 3 फीसदी से घटकर 2004-05/2011-12 में 1.2 फीसदी रह गई। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में वार्षिक औसत संपूर्ण रोज़गार वृद्धिदर में कमी आई। यह कमी 15 से 59 वर्ष तक की आयु वर्ग, जो कामकाजी उम्रवर्ग कहलाता है, में अधिक है।

रोज़गार लोच की दृष्टि से भी संकेतक अच्छी तस्वीर नहीं पेश करते। यह रोज़गार वृद्धिदर तथा संबंधित क्षेत्र में गुणवत्ता में वृद्धिदर के बीच अनुपात है। ऐसे आकलन दर्शाते हैं कि 1999-00 और 2009-10 के दशक के दौरान रोज़गार लोच भी महज 0.2

चित्र 1 : 2004-05 के दामों पर फैक्टर कोस्ट पर जीडीपी की औसत वार्षिक वृद्धिदर

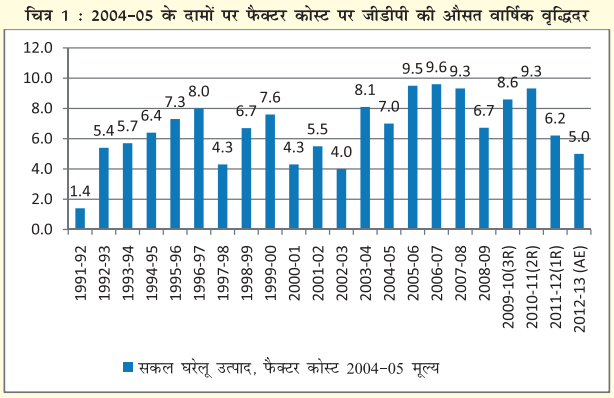

स्रोत-राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी, सीएसओ, 2013

चित्र 2 : क्षेत्रवार वार्षिक औसत जीडीपी वृद्धिदर में रूझान

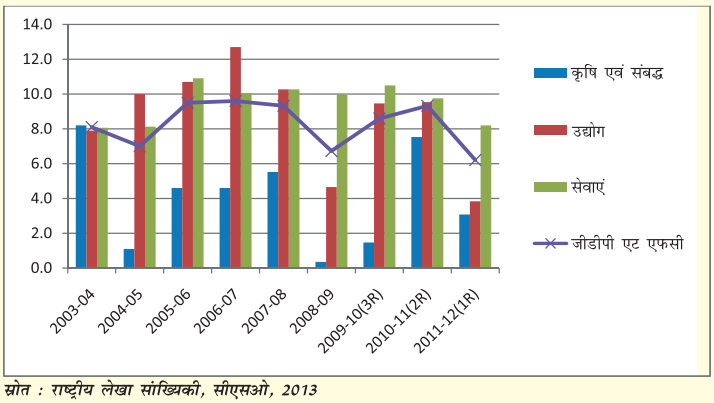

स्रोत : राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी, सीएसओ, 2013

टेबल 1 : जीडीपी के सदंर्भ में रोज़गार लचीलापन

क्षेत्र	1993-94 से 2004-05	1999-00 से 2009-10
कृषि	0.26	.0.05
द्वितीयक जिसका	0.59	0.60
विनिर्माण	0.47	0.25
तृतीयक जिसका	0.43	0.30
व्यापार	0.61	0.30
वित्तीय सेवाएं	0.99	0.81
सामुदायिक एवं व्यक्तिगत सेवाएं	0.06	0.28
कुल	0.29	0.2

स्रोत *ईयूएस, एनएसएसओ और राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी, सीएसओ, विभिन्न वर्ष*

फीसदी के आसपास रहा जो भारत में देखी गई जीडीपी वृद्धि में रोज़गार सृजन क्षमता का अभाव दर्शाता है। 1993-94 और 2009-10 के दो दशक में विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार लोच 0.47 से घटकर 0.25 रह गया, हालांकि सेवा क्षेत्र में सुधार हुआ लेकिन वह महज 0.28 फीसदी है। तालिका 1। वित्तीय सेवाएं जीडीपी के संदर्भ में उच्च रोज़गार लोच दर्शाते हैं लेकिन इस क्षेत्र में कार्यरत लोगों का कुल हिस्सा एक फीसदी से भी कम है। (रोज़गार एवं बेरोज़गारी सर्वेक्षण 2011-12, एनएसएसओ)। सेवाक्षेत्र का रोज़गार लोच उसके अंतर्निहित स्वभाव और प्रौद्योगिकी के उन्नत इस्तेमाल तथा उसके फलस्वरूप अधिक लोगों को रोज़गार देने की उसकी अक्षमता की वज़ह से निम्न है। इसलिए श्रम समावेशन की जिम्मेदारी विनिर्माण क्षेत्र पर आती है लेकिन जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र के हिस्से में ठहराव के कारण इस क्षेत्र के रोज़गार के घटते लोच की वज़ह से विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार वृद्धिदर भी 3 फीसदी पर ठहर गई है।

जीडीपी में उच्च वृद्धिदर से भारत में पर्याप्त रोज़गार सृजन नहीं हुआ है। वास्तव में, पिछले दो साल में जीडीपी वृद्धिदर में गिरावट आई है जैसा कि पहले दर्शाया गया। ऐसे रुझान वृद्धि और रोज़गार में सह संबंध नहीं स्थापित करते और वे वृद्धि प्रक्रिया के समावेशी होने पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। संपोषणीय जीविकाओं का सृजन समावेशी वृद्धि प्रक्रिया की आत्मा है। रोज़गार के आंकड़ों से यह साफ है कि ऐसे लक्षण भारतीय विकास गाथा से गायब हैं। भारतीय वृद्धि में जिन लक्षणों की चर्चा की गई है उनमें पर्याप्त त्रुटि की संभावना है। पिछले दो सालों में वृद्धिदरों में गिरावट भारतीय वृद्धि की सफलता की समाप्ति का द्योतक नहीं है बल्कि हम ऐसे पड़ाव पर हैं जहां वृद्धि की ट्रिकल डाउन पहलू तथा भारतीय वृद्धि रुझानों के समावेशीपन की समीक्षा करने की जरूरत है। ❑

(लेखिका बजट और शासन उत्तरदायित्व केंद्र (सीबीजीए) में वरिष्ठ शोध अधिकारी हैं।
ई-मेल : sona@cbgaindia.org)

YH-150/2013

विकास, रोज़गार एवं गरीबी

● जोमो क्वामे सुंदरम
अनीस चौधरी

प्रचलित विकास सिद्धांतों के ज्यादातर हिमायतियों का कहना है कि ग़रीबी दूर करने के लिए स्थायी आर्थिक विकास अनिवार्य है। 1990 के दशक में विश्व बैंक द्वारा कराए गए अनुसंधान में इसी तथ्य का पुरजोर समर्थन करते हुए कहा गया था कि उठती लहरें सभी नौकाओं को उठाती हैं। अर्थात् 'विकास ग़रीबों के लिए अच्छा है'।

1970 के दशक में और फिर अंतिम दशक के मध्य में, अनेक संसाधन संपन्न देशों ने संसाधनों के मूल्य में बढ़ोतरी के कारण ऊंची विकास दर हासिल की। किंतु, उनके विकास का असर ग़रीबी कम करने पर अधिक प्रभावशाली नहीं रहा। उदाहरण के लिए बोत्सवाना की वृद्धि दर दो दशकों से अधिक समय तक सात प्रतिशत से अधिक रही। फिर भी ग़रीबी की दर बहुत ऊंची, करीब 21 प्रतिशत रही। यह विश्व के सर्वाधिक असमानता वाले देशों में से एक है, जहां आय का गिनी गुणांक 0.61 था। संसाधन क्षेत्र आमतौर पर उच्च पूंजी सघनता वाले होते हैं, और इन क्षेत्रों में वृद्धि का अक्सर ग़रीबी उन्मूलन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अनुसंधानों, विशेषकर अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (आईएलओ) और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी), से पता चलता है कि संसाधन-विहीन देशों में भी विकास के सभी दौरों का असर (तालिका-1) ग़रीबी पर एक जैसा नहीं पड़ता।

ग़रीबी उन्मूलन पर विकास का प्रभाव अनेक घटकों पर निर्भर करता है, जो आर्थिक विकास के स्वरूप को परिभाषित करते हैं। विकास-ग़रीबी गठजोड़ में एक महत्वपूर्ण घटक रोज़गार है- इसका घनत्व और गुणवत्ता (इसी से संबंधित है उत्पादकता वृद्धि) दो अन्य महत्वपूर्ण घटक हैं- क्षेत्रगत संरचना या विकास एवं असमानता के स्रोत।

रोज़गार घनत्व : नौकरियों की मात्रा और गुणवत्ता

अक्सर यह माना जाता है कि रोज़गार सघनता वाला विकास अथवा रोज़गार बहुल क्षेत्रों में होने वाला विकास ग़रीबी दूर करने में अधिक योगदान करता है। इस प्रकार, विकास और रोज़गार के बीच संबंध के बारे में अनुसंधान ने विकास की रोज़गार सापेक्षता पर ध्यान केंद्रित किया है- अर्थात् उत्पादन में एक प्रतिशत परिवर्तन के संदर्भ में रोज़गार में प्रतिशत परिवर्तन।

किंतु, इस अध्ययन की तीन महत्वपूर्ण सीमाएं हैं। प्रथम, इसमें रोज़गार सृजन की वास्तविक मात्रा के बारे में कुछ नहीं कहा गया। अर्थात् 1 प्रतिशत विकास दर, और 1 प्रतिशत रोज़गार में वृद्धि वाले देश और 10 प्रतिशत विकास दर और 10 प्रतिशत रोज़गार वृद्धि वाले देश के लिए रोज़गार सक्षमता एकसमान होगी। दूसरे, इसमें जन-सांख्यिकीय परिवर्तनों को हिसाब में नहीं लिया गया है। काम करने योग्य आबादी में बढ़ोतरी अक्सर रोज़गार में वृद्धि को पीछे छोड़ देती है, जिससे ग़रीबी की समग्र दर पर कोई असर नहीं पड़ता। तीसरे, रोज़गार सक्षमता में वृद्धि नए सृजित रोज़गारों की गुणवत्ता के बारे में कुछ नहीं कहती (कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों में रोज़गार वृद्धि से 'निर्धन श्रमिकों' के रैंक या स्तर में बढ़ोतरी हो सकती है।

ऐसे में यह सहज निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि विकास की रोज़गार सापेक्षता में वृद्धि ग़रीबी उन्मूलन के लिए बेहतर है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि रोज़गार में बढ़ोतरी श्रमिकों की संख्या में बढ़ोतरी से अधिक तीव्र गति से हो रही है या नहीं ताकि रोज़गार वृद्धि की समग्र दर में इजाफा हो सके। इसके बिना, रोज़गार में बढ़ोतरी के बावजूद, बेरोज़गारी बनी रहेगी, जिससे दिहाड़ी और आय पर दबाव पड़ेगा।

रोज़गार बहुल विकास का ग़रीबी पर प्रभाव सृजित रोज़गार की गुणवत्ता पर भी निर्भर करता है। रोज़गार सापेक्षता का उत्पादकता के साथ अनूठा प्रतिलोम संबंध है। सशक्त रूप से बढ़ती रोज़गार सापेक्षता ऐसी अर्थव्यवस्थाओं

तालिका-1

सकल घरेलू उत्पाद की अलग-अलग दरें और ग़रीबी उन्मूलन : कुछ उदाहरण			
सकल घरेलू उत्पाद की दरें	ग़रीबी उन्मूलन की दर		
	ऊंची	सामान्य	कम
उच्च	इंडोनेशिया (1970 का दशक, 1980 का दशक) वियतनाम (1990 का दशक) युगांडा (1990 का दशक)	शहरी भारत (1990 का दशक)	ग्रामीण भारत (1990 का दशक) इंडोनेशिया (1990 का दशक)
मध्यम	बोलिविया (1990 का दशक)	बांग्लादेश (1991-96 का दशक)	इथियोपिया (1990 का दशक) बांग्लादेश (1996-2000 का दशक) भारत (1980 का दशक)

स्रोत : इस्लाम (2004)

तालिका-2

रोज़गार बहुल और उत्पादकता बहुल विकास एवं ग़रीबी उन्मूलन		
रोज़गार क्षेत्र	**रोज़गार बहुल विकास**	**उत्पादन बहुल विकास**
''अधिक उत्पादक''	ग़रीबी कम करने के संदर्भ में सकारात्मक संबंध	ग़रीबी कम करने के संदर्भ में सकारात्मक संबंध
''कम उत्पादक''	ग़रीबी उन्मूलन के साथ स्वाभाविक/सकारात्मक संबंध	ग़रीबी कम करने के संदर्भ में सकारात्मक संबंध

में औसत उत्पादकता को और कम कर सकती है, जो पहले से ही व्यापक तौर पर उत्पादकता की व्यापक कमी वाले रोज़गार के रूप में परिभाषित की गई है। कम उत्पादकता वाले रोज़गारों से आमतौर पर कम आय अर्जित होती है, जिससे कम उत्पादकता, कम दिहाड़ी और ग़रीबी के दुष्चक्र को बढ़ावा मिलता है।

दूसरी तरफ, हाल ही में चीन और कुछ अन्य दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के अनुभवों से पता चलता है कि कम उत्पादकता वाले रोज़गार के साथ भी पूर्ण रोज़गार का लक्ष्य हासिल करने से, अंततः नियोक्ताओं को श्रमिकों को सेवा में बनाए रखने के लिए कार्य स्थितियों में सुधार करना पड़ता है। रोज़गार बाजार की यह रिकार्डियन दृष्टि नव-पारंपरिक दृष्टि के विपरीत है और इसका खुलासा डब्ल्यू. ए. लेविस द्वारा आर्थिक विकास के संदर्भ में किया गया है। इसके सम-सामयिक समर्थकों का कहना है कि कुछ गिने चुने कर्मचारियों के लिए कार्य स्थिति में सुधार न केवल उन्हें श्रम अभिजात वर्ग में परिवर्तित करता है, बल्कि उससे उत्पादन और रोज़गार में स्थायी वृद्धि बनाए रखने के लिए आवश्यक निजी निवेश में रुकावट आने की भी संभावना रहती है। इस संदर्भ में एक मध्यम दृष्टिकोण में सामाजिक सुरक्षा तल से ऊपर एक उत्कृष्ट श्रमिक तल की स्थापना का सुझाव दिया गया है, जो वर्तमान में व्यापक रूप में स्वीकार किया जा रहा है। यह उसी तरह है जैसे लेविस ने जीविका को रोज़गार की मूल धारणा में वर्णित किया है।

इसके विपरीत, जब उच्च आर्थिक वृद्धि दर की परिणति उत्पादकता क्षमता में स्थाई वृद्धि के रूप में होती है तो अधिक उत्पादकता के साथ रोज़गार के अवसर पैदा किए जा सकते हैं। इससे बेरोज़गारों और अर्द्ध-रोज़गारों को उत्पादकता के उच्चतर स्तरों के साथ विस्तारित आर्थिक गतिविधियों में निरंतर आमेलित और एकीकृत करने में मदद मिलती है। इससे कार्मिकों को कौशल निर्माण में निवेश करने में भी मदद मिलती है, जिससे उच्च उत्पादकता और उच्चतर दिहाड़ी के अनुकूल चक्र का सृजन होता है। इस प्रकार निर्धन अधिक उत्पादकता हासिल करते हैं और अपनी आय में वृद्धि करते हैं। यह वृद्धि मौजूदा व्यवसायों के जरिये अथवा बेहतर कौशल की मदद से नए व्यवसायों में जाकर हासिल की जाती है।

क्षेत्रगत विकास - जहां निर्धन रहते और काम करते हैं

विकास कहां होता है, यह भी महत्वपूर्ण घटक है, जो विकास-ग़रीबी के संबंध को प्रभावित करता है। चूंकि अधिसंख्य लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और कृषि कार्यों में लगे हैं, और चूंकि कृषि आमतौर पर अधिक श्रम बहुल क्षेत्र है, अतः व्यापक तौर पर यह माना जाता है कि कृषि में वृद्धि से रोज़गार सघनता बढ़ने की संभावना है, अतः कृषि में बढ़ोतरी ग़रीबी कम करने में सहायक है।

किंतु, उत्पादकता के बारे में पिछला विचार विमर्श यहां भी प्रासंगिक है। लैटिन अमरीका में कृषि में रोज़गार बहुल विकास का संबंध ग़रीबों की कुल गणना में वृद्धि के साथ जोड़ा गया। इसे 1980 के आर्थिक संकट वाले दशक और उसके बाद ढांचागत समायोजन और अन्य आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के जरिये संकटपूर्ण आर्थिक निष्पादन के संदर्भ में देखना होगा। अस्तित्व बनाए रखने के लिए वैकल्पिक साधनों के अभाव में सामान्यतः धीमी गति से वृद्धि वाले लघु कृषि क्षेत्र में अधिक रोज़गार (अर्द्ध-रोज़गार सहित) पैदा होता है, जिसकी परिणति कृषि उपज में ठहराव और कभी-कभी इस क्षेत्र की औसत आय में कमी के रूप में होती है। इसलिए, अधिक श्रमिकों का अर्थ है, निम्नतर औसत उत्पादन और आय, अर्थात् कृषि में रोज़गार बहुलता औसत उत्पादकता वृद्धि को कम करती है।

इसके अतिरिक्त 2006 तक करीब आधी सदी में मुख्य अनाज फसलों के उत्पादन में उत्पादकता का व्यापक विकास हुआ जिससे खाद्य वस्तुओं के मूल्य में कमी आई। दूसरे शब्दों में अधिक कृषि उत्पादकता से उत्पादकता में बढ़ोतरी के लिए आवश्यक साधनों की आपूर्ति करने वालों सहित, उत्पादकों की आय में वृद्धि के अलावा उपभोक्ता मूल्यों में कमी लाने में भी योगदान रहा है।

ग़रीबों की तीन चौथाई संख्या देहात में रहती है, और शहरी निर्धनों में ज्यादातर वे लोग शामिल हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों से हाल ही में पलायन करके शहरों में आए हैं। अतः ग्रामीण निर्धनों, विशेषकर छोटे किसानों और दिहाड़ी कमाने वालों की आय में वृद्धि करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैश्विक स्तर पर कृषि रोज़गार में लगे लोगों की संख्या में बढ़ोतरी की कोई संभावना नहीं है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में उच्चतर मूल्य संवर्धित कृषि इतर रोज़गार की क्षमता और बागवानी एवं कृषि-प्रसंस्करण गतिविधियों का अनेक परिस्थितियों में समुचित विकास नहीं किया गया है।

कम कृषि उत्पादकता वाले देशों में रोज़गार-सघन विकास के बजाए उत्पादकता-सघन विकास पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। इसके लिए कृषि प्रौद्योगिकी, अनुसंधान और विकास, विस्तार सेवाओं और कृषि श्रमिकों के कौशल विकास जैसी गतिविधियों में निवेश करना होगा। कृषि श्रमिकों को उत्तरोतर उच्च उत्पादकता वाली गैर कृषि गतिविधियों में स्थानांतरित करने से भी कृषि उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है जिसका ग़रीबी उन्मूलन पर रचनात्मक प्रभाव पड़ेगा।

उत्पादकता से ढांचागत परिवर्तनों में वृद्धि

उत्पादकता में वृद्धि आमतौर पर ग़रीबी में कमी के लिए अनिवार्य समझी जाती है, लेकिन फिर भी यह संबंध जितना लोकप्रिय माना जाता है उसकी तुलना में यह अक्सर अधिक जटिल होता है। यह अनुमान गलत है कि उत्पादकता में वृद्धि से उत्पादकों की आय में अनिवार्यतः बढ़ोतरी होगी। 20वीं सदी में कृषि में उत्पादकता में बढ़ोतरी से खाद्य और अन्य कृषि जिन्सों के मूल्यों में ऐतिहासिक कमी लाने में मदद मिली।

यह संभव है कि पारिश्रमिक के स्वरूप

और शर्तों के अनुसार अधिक पैदावार करने वाले श्रमिकों को उनके बढ़े हुए उत्पादन का मामूली हिस्सा मिल पाए। आमतौर पर स्वतंत्र लघु कृषक अपने को निवेश और ऋण आपूर्तिकर्ताओं तथा उपज खरीदारों के साथ विषम संबंध में पाते हैं। अत: एक तरफ उत्पादकता में वृद्धि उत्पादकों की आय में वृद्धि करने में सक्षम है, वहीं दूसरी तरफ उत्पादकों की परिस्थितियों का इस बात पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है कि वे अपने बढ़े हुए उत्पादन का कितना लाभ वास्तव में उठा पाएंगे।

विकास के प्रारंभिक चरणों में, पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया में श्रम-बहुल विनिर्माण के विस्तार से ग़रीबी में तेज़ी से कमी आई। लैटिन अमरीकी देशों में भी यही देखने को मिला, जहां द्वितीयक क्षेत्र में रोज़गार बहुल विकास भी ग़रीबी दूर करने में मददगार रहा है। श्रम बहुल विनिर्माण क्षेत्र के विकास और अधिक प्रशिक्षित सेवाएं खेती से अधिशेष श्रमिकों को आकर्षित करती हैं, जिससे इस क्षेत्र की श्रमिक उत्पादकता में इजाफा होता है। इस तरह, ढांचागत परिवर्तनों से ग़रीबी कम करने में मदद मिलती है।

किंतु, 1990 के दशक (तालिका-1) से इंडोनेशिया के अनुभव बताते हैं कि विनिर्माण क्षेत्र में बढ़ोतरी के ग़रीबी कम करने संबंधी प्रभाव उस समय कम हो जाते हैं जब कृषि क्षेत्र से अधिशेष श्रमिकों को अधिक उत्पादक क्षेत्रों में आकर्षित करने की संभावनाएं समाप्त हो जाती है। अत: ऐसी पूर्व धारणाएं, कि कौन सा क्षेत्र रोज़गार प्रदान करने में ''अच्छा'' या ''बुरा'' है, भ्रामक हो सकती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि मध्यम आय वाले देशों में विनिर्माण क्षेत्र में रोज़गार ''अधिक'' और ''कम उत्पादक'' के बीच एक आंतरिक विभाजन अक्सर रहता है। उच्च उत्पादकता

आकृति-1 : विकास-ग़रीबी संबंध पर असमानता में कमी का ''पीवट इफेक्ट'' यानी धुरीय प्रभाव।

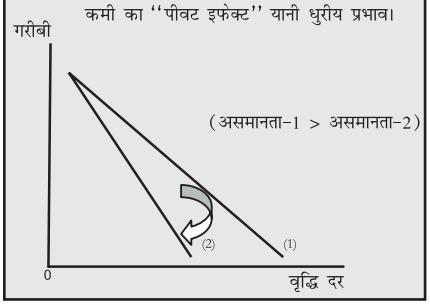

विनिर्माण की दिशा में औद्योगिक पुनर्गठन मध्यम आय वाले देशों में सतत् ग़रीबी उन्मूलन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कुल मिलाकर, यह स्पष्ट है कि हर तरह की बढ़ोतरी ग़रीबी उन्मूलन पर समान प्रभाव नहीं डालती। विकास का ग़रीबी उन्मूलन विषयक प्रभाव उसकी रोज़गार और उत्पादकता बहुलता पर निर्भर करता है तथा उसमें कम उत्पादक गतिविधियों से उच्चतर उत्पादक गतिविधियों में परिवर्तन हुआ है (तालिका-2)। निश्चय ही, उच्च उत्पादक गतिविधियों के विस्तार के बिना यह संभव नहीं हो सकता (अन्यथा ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में पलायन करने वाले लोगों से निम्न आय वर्ग, शहरी असंगठित क्षेत्र के आकार का विस्तार होगा।

विकास की पद्धति : असमान मामले

बोत्सवाना के उदाहरण से पता चलता है कि असमानता विकास के ग़रीबी उन्मूलन विषयक प्रभाव का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। पूंजी बहुल क्षेत्रों में ऐसा विकास असमानता को बढ़ा सकता है और उसका ग़रीबी उन्मूलन पर कम असर पड़ सकता है। विकास के प्रारंभिक चरण के दौरान पूर्वी एशिया में असमानता में तेज़ी से कमी आई जिससे ग़रीबी उन्मूलन में मदद मिली। श्रम बहुल विनिर्माण क्षेत्र के विस्तार के अलावा भूमि सुधार से पूर्वी एशियाई देशों जैसे दक्षिण कोरिया और ताइवान में अधिक समान विकास में महत्वपूर्ण मदद मिली जिससे ग़रीबी में तेज़ी से कमी आई।

पूर्वी एशिया में निर्धनों की कुल संख्या जो 1970 में लगभग 40 करोड़ थी, वह 1990 में कम होकर करीब 18 करोड़ रह गई, जबकि इसी अवधि में जनसंख्या में 42.5 करोड़ की वृद्धि हुई। विश्व बैंक का अनुमान है कि 1975 और 1995 के बीच पूर्वी एशिया में ग़रीबी में दो तिहाई कमी आई। निर्धनों का अनुपात 1975 में 60 प्रतिशत था जो 1995 में घट कर 20 प्रतिशत रह गया।

यदि विकास की प्रक्रिया ऐसी होगी जिसमें निर्धनों की तुलना में संपन्न लोगों की आय में वृद्धि अधिक तेज़ी से हो, तो ग़रीबी दूर करने पर प्रभाव धीमा रहने की संभावना रहती है। बढ़ती असमानता से ग़रीबी उन्मूलन की तीव्र गति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका रहती है। इसके विपरीत आय का समानता पूर्ण वितरण कम विकास की स्थिति में भी ग़रीबी उन्मूलन में सहायक हो सकता है।

संभावित समग्र प्रभाव विभिन्न प्रक्रियाओं, प्रभावों और दुष्प्रभावों का संयुक्त परिणाम होता है। इसीलिए असमानता में खासी वृद्धि के बावजूद चीन में उत्पादन और रोज़गार वृद्धि का ग़रीबी उन्मूलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दक्षिण अमरीका में इस सदी के शुरू से ही ग़रीबी में महत्वपूर्ण कमी आई है, जिसका श्रेय व्यापक तौर पर असमानता में कमी को जाता है, हालांकि वहां विकास दर सामान्यत: कम रही है और पूर्वी एशिया की तुलना में अधिक असमान रही है। यह प्रवृत्ति विशेषकर 1980 के आर्थिक संकट वाले दशक और तत्पश्चात असमान प्रगति से संबद्ध रही है।

यहां ''विकास की ग़रीबी उन्मूलन क्षमता'' की धारणा की शुरूआत करना उपयोगी लगता है, जिसमें ग़रीबी में 'एक्स' प्रतिशत कमी का असर वृद्धि दर में 'एक्स' प्रतिशत बढ़ोतरी को दर्शाता है। वास्तव में यह विकास-ग़रीबी रेखा की ढलान को दर्शाता है। अनुसंधान से पता चलता है कि विकास की ग़रीबी उन्मूलन क्षमता असमानता के प्रचलित स्तरों पर निर्भर करती है। यदि विकास दर में एक प्रतिशत बढ़ोतरी असमानता में कमी भी साथ लेकर आती है, तो इस स्थिति में ग़रीबी में 'एक्स' प्रतिशत कमी होगी। इसका अर्थ है विकास-ग़रीबी रेखा एक सीधी ढाल (''पीवट इफेक्ट'' अर्थात् धुरीय प्रभाव, जैसा कि आकृति -1 में दर्शाया गया है) की स्थिति में है, अथवा विकास-ग़रीबी रेखा एक समानांतर, अधोगामी बदलाव (''शिफ्ट इफेक्ट'' अर्थात् परिवर्तन प्रभाव, जैसा कि आकृति-2 में दर्शाया गया है) की स्थिति में है।

आकृति-1 में पीवट इफेक्ट अर्थात् धुरीय प्रभाव और आकृति-2 में शिफ्ट इफेक्ट अर्थात् परिवर्तन प्रभाव को दर्शाया गया है। इसी

आकृति-2 विकास-गरीबी संबंध पर असमानता में कमी का ''शिफ्ट इफेक्ट'' यानी परिवर्तन प्रभाव।

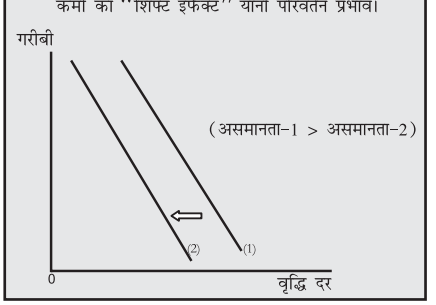

आनुभविक मुद्दे पर कौन सा प्रभाव सही-सही पड़ता है, यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है, लेकिन किसी भी स्थिति में यह स्पष्ट है कि जब घटती समानता के साथ आर्थिक विकास होता है तो ग़रीबी के स्तर में महत्वपूर्ण गिरावट आती है।

निष्कर्ष :

ग़रीबी में कमी के लिए आर्थिक वृद्धि को अक्सर अनिवार्य बताया जाता है, जो अलग अलग स्थितियों में भिन्न प्रभाव दर्शाता है, जैसा कि पारेटो कंडीशनैलिटी की धारणा में निहित है। किंतु, ऐसी शर्त के बावजूद उच्च विकास दर अकेले पर्याप्त नहीं होती। ग़रीबी में कमी के लिए विकास का पैटर्न और स्रोत तथा साथ ही वह तरीका भी महत्वपूर्ण है जिससे विकास के लाभ वितरित किए जाते हैं। रोज़गार, उत्पादकता और संरचनागत परिवर्तन विकास के ग़रीबी कम करने के प्रभावों में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं।

अर्थव्यवस्था के एक क्षेत्र के अंतर्गत विकास ग़रीबी में स्वत: कमी सुनिश्चित नहीं कर सकता (विकास की रोज़गार-और उत्पादकता-सघनता पर काफी कुछ निर्भर करेगा)। रोज़गार-सघनता के साथ विकास के जरिए ग़रीबी में अधिक कमी आने की संभावना रहती है बशर्ते यह एक ''अधिक उत्पादक'' क्षेत्र में हो, जबकि ''कम उत्पादक'' क्षेत्रों में ग़रीबी में कमी के लिए सामान्यत: अधिक उत्पादकता वृद्धि आवश्यक है। इस प्रकार ग़रीबों की क्षेत्रगत स्थिति और विभिन्न क्षेत्रों के बीच गतिशीलता भी महत्वपूर्ण है। श्रमिकों को कम उत्पादक क्षेत्र से अधिक उत्पादक क्षेत्रों में जाने में सक्षम होना चाहिए, जिसके लिए अक्सर कौशल विकास में समुचित निवेश आवश्यक है, साथ ही अधिक उत्पादक क्षेत्रों का तेजी से प्रसार भी जरूरी है।

ग़रीबी में कमी से संबंधित आर्थिक विकास का रचनात्मक चक्र बढ़ती उत्पादकता के साथ रोज़गार में वृद्धि के जरिए कायम किया जा सकता है। ग़रीबी में कमी से उत्पादकता में और बढ़ोतरी की संभावना पैदा होती है क्योंकि अधिक वेतन पाने वाले कार्मिक अधिक उत्पादकता के कारण कौशल उन्नयन में अधिक निवेश कर सकते हैं। इसकी परिणति उच्चतर आर्थिक विकास दर में होती है। बढ़ती उत्पादकता के साथ रोज़गार में बढ़ोतरी से वर्तमान क्षेत्रों और व्यवसायों के भीतर रोज़गार की स्थिति में बदलाव भी आता है क्योंकि कार्मिक उच्चतर उत्पादकता और परिष्कृत उत्पादकता वाले व्यवसायों और क्षेत्रों की ओर आकर्षित होते हैं।

विकास-ग़रीबी गठजोड़ में एक अन्य महत्वपूर्ण घटक असमानता का है। असमानता बढ़ाने वाली विकास प्रक्रिया की तुलना में ऐसी विकास प्रक्रिया जिसमें आबादी के उच्च वर्ग की तुलना में निम्नतम वर्ग को लाभ पहुंचते हों, ग़रीबी में कमी लाने पर अधिक असर डालती है।

ग़रीबी उन्मूलन में उपरोक्त घटकों के महत्व को देखते हुए विकास और ग़रीबी में कमी के अलग-अलग अनुभव सामने आना स्वाभाविक है। उच्च विकास दर के साथ ग़रीबी में कमी की दर सामान्य या धीमी हो सकती है, यह भी संभव है कि सामान्य विकास दर के साथ ग़रीबी में तेज़ी से कमी आए-बशर्ते विकास का पैटर्न पर्याप्त रूप में रोज़गार-सघन हो, जैसा कि एशिया और दक्षिण एशिया में रहा है। ❑

(जोमो क्वामे सुंदरम खाद्य एवं कृषि संगठन के रोम स्थित सहायक महानिदेशक हैं जबकि अनीस चौधरी बैंकाक स्थित एशियाई आर्थिक एवं सामाजिक आयोग में मेक्रोइकोनॉमिक्स तथा विकास विभाग के निदेशक हैं।

ई-मेल : jomoks@yahoo.com, a.chowdhury@aus.edu.au)

Geog./भूगोल

by

आलोक रंजन

OUR RESULTS ▶ 2011 Ranks - 4, 20, 27, 35 ..... 100 (approx) | 2010 Ranks - 18, 21, 26, 31 ..... 100 more.

2012 : - RESULTS

- Total results with geography 300+ (could be more...).
- 12* students in top 100 (based on received phone calls & thanksfullness) & total result more than 100... including 2, 4, 12, 27, 36, 40, 50, 52, 53, 54 ... more than 100.

हिन्दी माध्यम में भी शानदार सफलता-Ranks - 36, 40, 50, 52, 54, 93 ...

कक्षा कार्यक्रम

100 दिवसीय कक्षा कार्यक्रम

- अत्यंत सावधानीपूर्ण तैयार की गई उत्तम पाठ्यसामग्री।
- समग्र टेस्ट सीरीज कार्यक्रम।
- विगत वर्षों के प्रश्नों का विश्लेषण एवं व्याख्या।
- मानचित्र (Mapping) पर 12 दिवसीय विशेष कक्षाएं।
- मैप, डायग्राम आदि पर दक्षता पूर्ण कक्षाएं।
- आदर्श उत्तर एवं उत्तर लेखन कला, कक्षा कार्यक्रम के एक विशेष भाग के रूप में ।
- छात्रों द्वारा लिखित उत्तरों का साप्ताहिक मूल्यांकन, विशेष शिक्षक समूह द्वारा।

भूगोल सर्वोत्तम वैकल्पिक विषय के रूप में

- उच्चतम औसत अंक देने वाला । जैसे - 425, 423, 407 आदि।
- लगभग 3000 मुख्य परीक्षा में शामिल परीक्षार्थियों में से 300 सफल प्रतियोगी प्रत्येक वर्ष।
- प्राथमिक परीक्षा में 30 से 40 प्रश्न, प्रत्येक वर्ष।
- 250 अंकों का निबंध (भूगोल विषय से संबंधित)।
- सामान्य अध्ययन - प्रश्नपत्र प्रथम (पाठ्यक्रम का 50%) + द्वितीय प्रश्नपत्र (20%) + तृतीय प्रश्नपत्र का (80%) भूगोल।

विषय से संबंधित अर्थात् भूगोल विषय सामान्य अध्ययन मुख्य परीक्षा का लगभग (300 से 400) अंकों को समाहित करता है।

BATCHES STARTS : 20th Oct.

बैच - I मुखर्जी नगर (हिन्दी)

बैच - II मुखर्जी नगर (ENGLISH)

बैच - III करोल बाग (ENGLISH)

DIGMANI EDUCATIONS www.alokranjansias.in

Corporate office – A-18 Top Floor, Young Chamber, Behind Batra Cinema, Mukherjee Nagar, Delhi-9, Ph : 27658009, 9311958008, 9311958009

Branch Office - 17-A/20, IIIrd Floor, Near Metro Station (Near Titan Showroom), Ajmal Khan Road, Karol Bagh, Delhi-05, Ph : 28756008, 9311958007, 9311958009

YH-148/2013

गरीबी उन्मूलन और पशुपालन

● रवि शंकर

ग़रीबी हटाओ का नारा 1969 में पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने दिया था और इस नारे ने उन्हें 1971 के चुनावों में जबरदस्त सफलता भी दिलाई। तब से देश में ग़रीबी को समाप्त करने के प्रयासों में काफी तेज़ी आ गई है। परंतु कहावत है कि मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की, कुछ यही हालत ग़रीबी हटाओ कार्यक्रम की भी हुई। नारे बदलते गए और ग़रीबी भी बढ़ती गई। आज हालात ग़रीबी से भुखमरी की ओर बढ़ गए हैं और सरकार को विवश होकर खाद्य सुरक्षा कानून लाना पड़ा है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद से ही देश में ग़रीबों को भोजन उपलब्ध कराने के लिए जनवितरण प्रणाली लागू की गई थी। यह प्रणाली भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गई और आज इससे ग़रीबों को भोजन के लिए राशन नहीं मिल पा रहा है। शायद इसलिए कैश-ट्रांसफर यानी कि नगदी हस्तांतरण की योजना शुरू कर दी गई है।

सरकार ने जनवितरण प्रणाली की असफलता को केवल एक मायने में देखा है और वह है लाभार्थियों तक राशन का न पहुंचना। परंतु इसकी असफलता का एक पहलू और है जिसका अध्ययन नहीं किया गया है। यह पहलू है कि जिन लाभार्थियों तक राशन पहुंच रहा था, क्या उनके आर्थिक स्तर में भी कुछ सुधार आया है? इस दृष्टि से कोई अध्ययन नहीं किया गया। अंग्रेज़ी में एक कहावत है ''द पुअर नीड ए रॉड, नॉट फिश'', इसका अर्थ है ग़रीब को मछली नहीं, बल्कि मछली पकड़ने वाले कांटे की जरूरत होती है जिससे वह स्वयं अपने लिए मछली पकड़ सके। मछली देने का अर्थ है उसे परावलंबी बनाना, जबकि कांटा देने का अर्थ है उसे स्वावलंबी बनाना। फिलहाल जो भी योजनाएं हैं, चाहे वह जनवितरण प्रणाली हो या मिड डे मील हो या फिर खाद्य सुरक्षा हो, सभी ग़रीबों को परावलंबी बनाने वाली योजनाएं हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि अरबों-खरबों रुपये ख़र्च करने के बाद भी ग़रीबी बढ़ ही रही है। साथ ही इन योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए लिए जाने वाले कर्ज़ों

तालिका-1

विभिन्न भू-आकार वर्ग के स्वामी किसान परिवारों की कर्जदारी स्थिति (पूरे भारत में)

भूमि (हे.)	*अनुमानित किसानों की सं. (लाख में)*	*कुल वर्ग का प्रतिशत*	*कर्जदार किसानों की अनुमानित संख्या*	*कुल का वर्ग प्रतिशत*	*कर्जदार किसानों का प्रतिशत*	*औसत ऋण राशि (रु. में)*
1	*2*	*3*	*4*	*5*	*6*	*7*
0.01 तक	12.59	1.40	5.71	1.3	45.3	6121
0.01-0.40	292.87	32.80	130.11	30.0	44.4	6545
0.41-1.00	283.61	31.70	129.21	29.8	45.6	8623
1.01-2.00	160.60	18.00	81.92	18.8	51.0	13762
2.01-4.00	93.50	10.50	54.41	12.5	58.2	23456
4.01-10.00	42.58	4.80	27.73	6.4	65.1	42532
10 & अधिक	7.75	0.80	5.15	1.2	66.4	76232
भारत	**893.50**	**100.00**	**434.24**	**100.0**	**48.6**	**12585**

स्रोत : रिपोर्ट सं. 498 (59/33/1), किसानों का परिस्थिति मूल्यांकन सर्वेक्षण: किसानों की ऋण स्थिति, राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण का 59वां चरण (जनवरी-दिसंबर 2003)

और करों के कारण देश में महंगाई और अन्यान्य आर्थिक संकट भी तेज़ी से बढ़ रहे हैं।

सवाल है कि इसका समाधान क्या है? देखा जाए तो इस स्थिति का समाधान काफी पहले महात्मा गांधी ने बता रखा है। महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज का जो चित्र खींचा है उसमें ग़रीबी उन्मूलन का सीधा फार्मूला दिया गया है। स्वाधीनता के बाद से लेकर आज तक देश की जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत गांवों में रहता है और प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वह आजीविका के लिए खेती पर निर्भर है। महात्मा गांधी ने खेती और पशुपालन को जोड़ कर देखने का सुझाव दिया था। उनका मानना था कि खेती और पशुपालन अन्योन्याश्रित हैं। दुर्भाग्यवश देश में जो हरित क्रांति की गई, यूरोपीय तकनीक के अंधानुकरण की नीतियों के कारण उसमें पशुओं की भूमिका न्यूनतम थी। पशुओं से लिए जाने वाले कामों के लिए मशीनें और रसायनों के उपयोग को बढ़ावा दिया गया। इसका लाभ तो मिला परंतु ग़रीबों को नहीं। इसका लाभ केवल वे किसान उठा पाए जिनके पास काफी जमीन थीं और इस कारण जो पहले से ही काफी संपन्न थे, परंतु इसका उन छोटे और मध्यम वर्ग के किसानों को बिल्कुल भी नहीं मिला जिनके पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन थी और जो आर्थिक रूप से भी पिछड़े थे। उलटे बढ़ती महंगाई और मशीनीकरण व रसायनीकरण के कारण खेती की बढ़ती लागत ने उनकी कमर तोड़ दी और वे कर्ज़ में डूबते चले गए। इसका ही परिणाम पिछले कुछ वर्षों में किसान आत्महत्याओं के रूप में सामने आया। एग्री सेंशस 2012 के अनुसार 1,117.12 लाख किसानों में से 935.42 लाख यानी कि 84 प्रतिशत किसान दो हैक्टेयर से कम जोत वाले हैं और इनमें से लगभग आधे से अधिक 346.95 लाख किसान कर्ज़ में डूबे हुए हैं (देखें तालिका-1)। समझा जा सकता है कि इतनी छोटी जोत वाले किसानों को यदि कर्ज़ लेना पड़े तो उसे चुकाना उसके लिए कितना कठिन हो सकता है। जिन पशुओं से उनको वर्षभर का भोजन मिलता था, वे मांस उद्योग की भेंट चढ़ गए।

जब से मानव सभ्यता शुरू हुई है तभी से कृषि के साथ-साथ पशुपालन, डेयरी और मछलीपालन की गतिविधियां मानव जीवन का एक अभिन्न अंग रही हैं। इन गतिविधियों में न केवल खाद्यान्न और भारवाही पशुशक्ति ने अपने योगदान को बनाए रखा है बल्कि पारिस्थितिकी संतुलन भी बनाए रखा है। अनुकूल जलवायु के कारण पशुपालन, डेयरी और मछलीपालन ने भारत में प्रमुख सामाजिक-आर्थिक भूमिका निभाई है। पारंपरिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक विश्वासों ने भी इन गतिविधियों को बनाए रखने में अपना योगदान दिया है। ये गतिविधियां ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर भूमिहीन, छोटे और सीमांत किसानों तथा महिलाओं के बीच लाभप्रद रोज़गार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं तथा लाखों लोगों को सस्ता और पोषक भोजन उपलब्ध कराते हैं।

प्राचीन काल की प्रणालियों के अनुसरण में तथा पशुधन पर लोगों की निर्भरता के कारण भारत विश्व में सबसे बड़ा पशुधन संख्या वाला देश है। कृषि मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार देश में विश्व के 56.8 प्रतिशत भैंसे तथा 14.5 प्रतिशत गोपशु हैं। देश में लगभग 716 लाख भेड़ें तथा 1,405 लाख बकरियां तथा लगभग 111 लाख सूअर हैं। पशुधन की संख्या भारत में अब भी तेज़ी से बढ़ रही है। देश की 8,000 किमी. से अधिक की तट रेखा है तथा विशाल अंतर्देशीय जल संसाधनों के कारण भारत में मछलीपालन की भी अपार संभावनाएं हैं।

पशुपालन, डेयरी और मछलीपालन क्षेत्र की देश की अर्थव्यवस्था और सामाजिक-आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (सीएसओ) के अनुमान के अनुसार, पशुधन तथा मछलीपालन क्षेत्रों का कुल उत्पादन की कीमत 2010-11 के दौरान चालू मूल्यों पर लगभग 4,61,434 करोड़ रुपये था जो कृषि तथा सहायक क्षेत्रों से 16,23,968 करोड़ रुपये के उत्पादन की कीमत का कुल मिलाकर लगभग 28.4 प्रतिशत है। चालू मूल्यों पर पशुधन और मछलीपालन क्षेत्र को मिलाकर जीडीपी का अनुमान 2010-11 के दौरान 3,22,894 करोड़ रुपये था जो 10,62,004 करोड़ रुपये की जीडीपी का लगभग 30.40 प्रतिशत है।

इन आंकड़ों से पशुपालन का ग़रीबी उन्मूलन से संबंध समझा जा सकता है। यदि पशुपालन को योजनापूर्वक विकसित किया जाए तो न केवल बड़ी संख्या में रोज़गारों का सृजन होगा बल्कि लोगों को पोषक भोजन भी प्राप्त होगा। ध्यान देने की बात यह है कि इस क्षेत्र में सृजित होने वाले रोज़गार भोजन-उत्पादन से जुड़े हुए हैं, जोकि मनुष्य जीवन के लिए अनिवार्य आवश्यकता हैं। पशुपालन में भी बकरी, भेड़ें और मुर्गियों के पालन से गाय का पालन अधिक लाभकारी है। भारत मूलतः एक शाकाहारी देश है और इस कारण बकरी, भेंड़े और मुर्गियों का पालन उतना लाभकारी नहीं है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य व कृषि संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में मांस और मछली पर किया जाने वाला व्यय दूध और सब्जी व फलों पर किए जाने वाले व्यय (देखें तालिका-2) से काफी कम है। इसके अलावा इनका खेती में उतना उपयोग नहीं है जितना कि गाय का। इसी प्रकार भैंसों की भी बात

तालिका-2
विभिन्न खाद्य पदार्थों पर खर्च का क्षेत्रवार अनुपात (प्रतिशत में)

क्षेत्र/देय	खाद्य व्यय कुल व्यय का %	खाद्य व्यय का %					
		रोटी व अनाज	मांस	दूध	मछली	फल व सब्जियां	अन्य खाद्य पदार्थ
ईएपी	52.4	31.7	17.6	4.4	6.1	17.6	22.7
चीन	54.1	32.4	19.6	4.0	4.8	17.6	21.6
ईईसीए	38.8	17.8	19.3	12.3	2.3	18.3	30.1
एलऐसी	26.2	18.9	22.4	12.2	2.8	15.6	28.1
एनईएनए	42.4	21.6	20.9	9.9	3.2	17.4	27.1
दक्षिण अफ्रीका	52.5	32.1	8.2	16.9	5.1	14.1	23.6
भारत	52.5	30.8	9.0	17.8	5.2	14.0	23.2
एसएसए	60.9	31.4	12.8	5.6	9.3	18.8	22.1
सभी क्षेत्र	48.9	28.8	15.1	10.1	5.2	16.5	24.3
उच्च आय वाले देश	13.3	13.1	18.0	9.0	5.0	13.9	41.0

* 2010 के विश्व बैंक वर्गीकरण पर आधारित
स्रोत : आईसीपी 2005 के आंकड़े भारत और चीन के लिए डब्ल्यूयू 2005 के आंकड़े

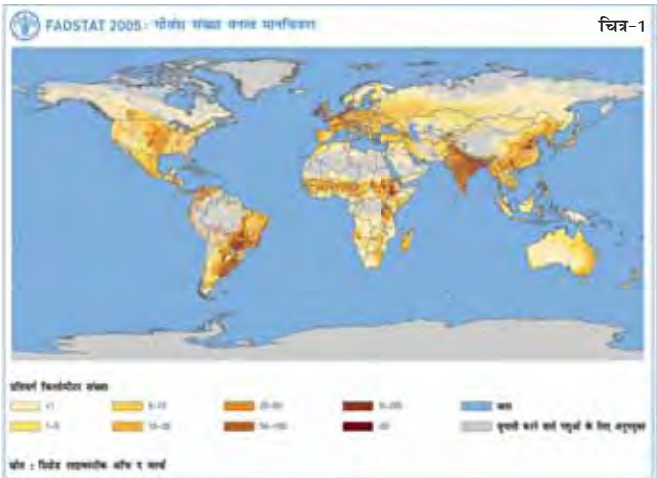

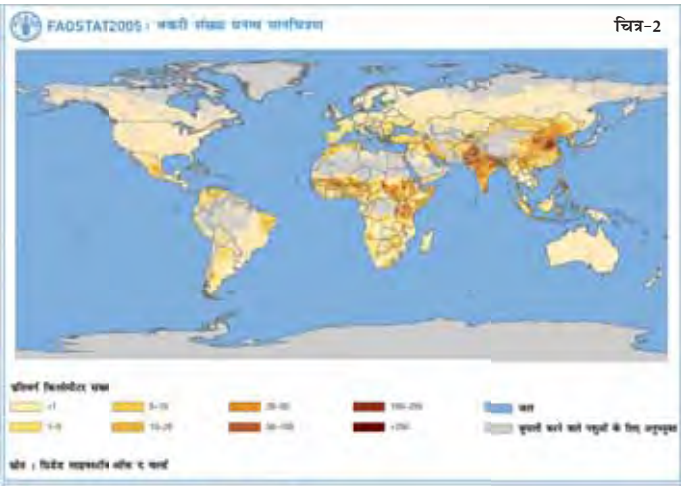

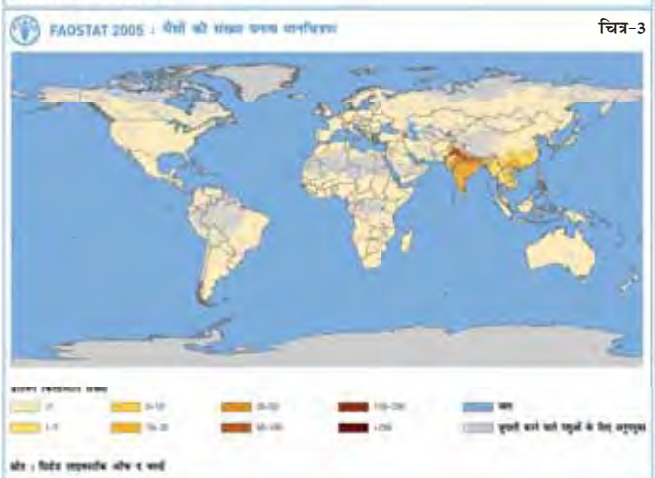

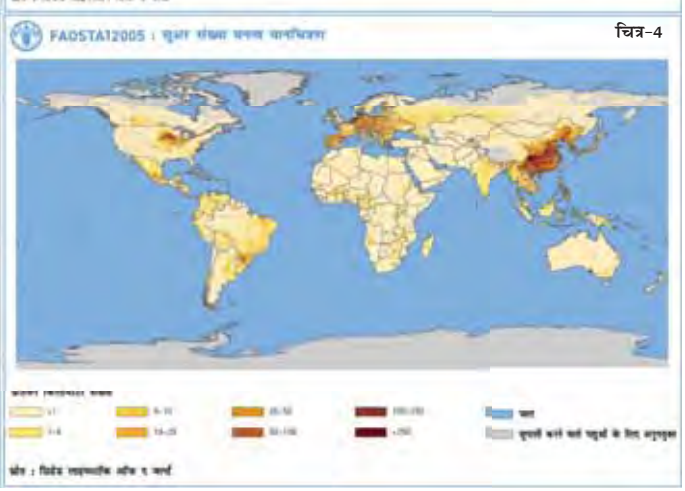

है। भैंस विश्व में भारत के अलावा और कहीं नहीं पाई जाती। पूरी दुनिया भारत से गायों का आयात करके ले गई, भैंसों का नहीं। इसका कारण भी स्पष्ट था। गायें गुणवत्ता के मामले में भैंसों से बेहतर हैं। आज यह सिद्ध हो गया है कि मानव स्वास्थ्य के लिए गाय का दूध भैस के दूध से बेहतर होता है। साथ ही भैंसों की बजाय बैल अधिक कर्मठ होते हैं। इसलिए भी प्राचीन काल से देश में गायों के पालन पर ही ज़ोर दिया जाता रहा है और संभवत: यही कारण था कि पूरी दुनिया ने भारत की गायें ही लीं, भैंसें नहीं। इसलिए आगे हम गाय के उपयोग और महत्व पर चर्चा करेंगे।

पशुपालन और विशेषकर गोपालन का ग़रीबी उन्मूलन से संबंध आज संयुक्त राष्ट्र भी समझने लगा है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य व कृषि संगठन ने इस पर एक रिपोर्ट भी प्रकाशित की है। उसके अनुसार खेती में गायों के उपयोग से गांवों की ग़रीबी दूर की जा सकती है। उसका यह भी मानना है कि गायों से प्रति हेक्टेयर उपज भी बढ़ाई जा सकती है और वह भी बिना जमीन खराब किए। हैरत की बात यह है कि वह गायों के रख-रखाव के लिए भारत की प्राचीन व्यवस्था 'सामूहिक गोचर भूमि' रखे जाने की बात करता है। यह रिपोर्ट बताती है कि गायों से ही किसानों को न केवल अतिरिक्त आय हो सकती है बल्कि यह कृषि के संभावित खतरों को भी कम करती है और उसकी बचत को बढ़ाती है।

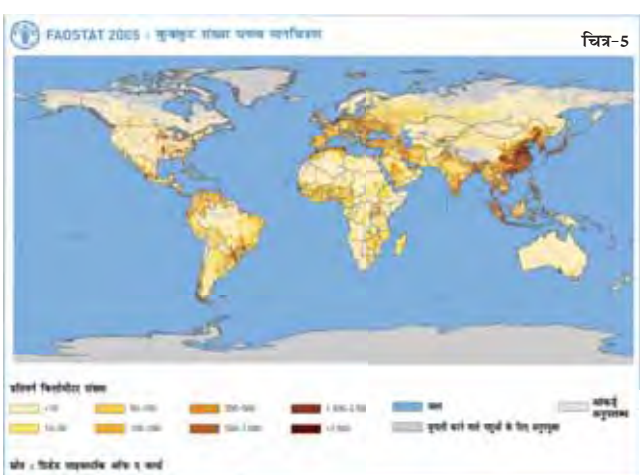

कुछ वर्ष पूर्व रवांडा ने गाय से ग़रीबी उन्मूलन का एक सफल प्रयोग किया। वहां की सरकार ने एक योजना के तहत प्रत्येक परिवार को एक गाय दी। वह गाय उसके लिए कम से कम भोजन और थोड़ी बहुत आय का साधन बन जाएगी। इससे उसकी ग़रीबी दूर होगी। यूनिसेफ और अन्य कई संगठनों की रिपोर्ट है कि इससे वहां की ग़रीब जनता के जीवन स्तर में काफी सुधार आया। 'अफ्रीकन स्मॉलहोल्डर फॉरमर्स ग्रुप' की रिपोर्ट के अनुसार इस योजना में शामिल 88 प्रतिशत किसानों की आय बढ़ गई और उनकी हालत सुधरी। उनकी खेती अच्छी हुई और दूध से भी आय बढ़ी। दूध से उन्हें पोषण भी प्राप्त हुआ। ऐसा ही एक प्रयोग वियतनाम में भी किया गया

था। वहां पांच परिवारों पर एक गाय दी गई थी। इस प्रकार का एक प्रयोग अपने देश में गुजरात में भी किया गया है। वहां जनजातीय क्षेत्र के किसानों को गोशालाओं से नि:शुल्क बैल दिए गए। इससे उनकी कृषि लागत घटी और उनकी आय बढ़ी। अब उन किसानों को गाय देने की भी योजना बनाई जा रही है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि पशुपालन से ग़रीबी उन्मूलन पर विश्व में कई प्रयोग हो रहे हैं और वे सफल भी हो रहे हैं। भारत के संदर्भ में यदि हम देखें तो भारत में गायों की संख्या हमेशा से काफी अधिक रही है। गोपालन की परंपरा भारत की पहचान रही है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य व कृषि संगठन के आंकड़ों के अनुसार भारत गायों की सबसे सघन आबादी वाला देश है (देखें चित्र-1)। गायों के अलावा भैंसे भी हैं जो केवल भारत में ही पाई जाती हैं। (देखें चित्र-2) गाय और भैंसों के अलावा सुअर और मुर्गीपालन भारत में होता तो है परंतु वह गाय-भैंसों की तुलना में काफी कम है (देखें चित्र-4 और 5)। संख्या के अलावा गाय का खेती में काफी महत्व है। गाय से मिलने वाले गोबर व गोमूत्र से खाद और कीट नियंत्रक बनाए जा सकते हैं जो कि किसान की खेती की लागत कम करने में सहायक होते हैं। इस पर अमरावती, महाराष्ट्र के सुभाष पालेकर ने जीरो बजट खेती का एक फार्मुला दिया है जिसमें खेती करने के लिए किसान को एक पैसा भी ख़र्च नहीं करना पड़ता है और उसकी उपज भी सही बनी रहती है। सुभाष पालेकर के अभियान से महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु के हज़ारों किसान जुड़े हैं और उन्होंने सफलता के अनेक कीर्तिमान रचे हैं। इसी प्रकार आंध्र प्रदेश में भी बड़े पैमाने पर सफल प्रयोग किया गया है।

गाय, कृषि और खाद्य सुरक्षा

भारत के अधिकांश यानी कि 83 प्रतिशत किसानों के पास केवल एक या दो एकड़ भूमि ही है (देखें तालिका-3)। मतलब साफ है इतने छोटे खेतों में ट्रैक्टर से खेती असंभव है। इन खेतों में बैलों से ही खेती संभव है। आज यह सिद्ध हो चुका है कि केवल देसी नस्लों की गायों से उत्पन्न बैल ही मेहनती होते हैं। विदेशी बैल भारतीय परिस्थितियों में काम नहीं कर पाते हैं। ऐसे में गाय ही हमारे अन्न उत्पादन की वृद्धि को सुनिश्चित कर सकती है। इसके अतिरिक्त हम बैलों का कटी फसल की ढुलाई, सिंचाई के कामों में, उसके गोबर का खाद और गोमूत्र का कीट नाशक के रूप में उपयोग करते हैं। गोबर की खाद फसल में नाइट्रोजन की मात्रा को संतुलित रखती है। फसलों में नाइट्रोजन की बढ़ी हुई मात्रा से ही कीटों का प्रकोप बढ़ता है। यूरिया आदि रसायन फसलों में नाइट्रोजन की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ा देते हैं, परिणामस्वरूप कीटों का प्रकोप भी काफी बढ़ जाता है। इस प्रकार गोबर की खाद स्वाभाविक रूप से कीटों को फसल से दूर रखती है। एक आकलन के अनुसार एक गाय का गोबर 5 एकड़ भूमि को खाद उपलब्ध करा सकता है और उसका मूत्र 100 एकड़ भूमि की फसल को कीटों से बचा सकता है।

बकरी की मींग भी अच्छी खाद होती है। देश में जहां भी बकरी पालन होता है वहां इसकी मींग को भी खेतों में डाला जाता है। देश के कई हिस्सों खासकर मध्य प्रदेश के इलाकों में बकरी पालने वाले समूहों को लोग अपने गांव में आमंत्रित करते हैं। वे अपनी बकरियों के साथ गांवों में घूमते हैं। इसके लिए गांव वाले उनके भोजन आदि का प्रबंध करते हैं। इन समूहों की आजीविका का स्रोत ही यही है।

इसके अलावा जुताई के समय बैलों की चाल हल्की होती है। जुताई करते समय गिरने वाले गोबर और गोमूत्र से भूमि में स्वत: खाद डलती जाती है। गोबर की जैविक खाद, हरी पत्तियों की खाद, प्रकृति के साथ मिलकर भूमि को उपजाऊ बनाते हैं। ये रासायनिक कूड़े की समस्या भी नहीं पैदा करते हैं। खेती में प्रयोग किए जाने वाले रसायनों से होने वाली ग्रीनहाउस गैसों की समस्या पर संयुक्त राष्ट्र के खाद्य व कृषि संगठन ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है जिसके अनुसार ये रसायन

तालिका-3 : जोतों की संख्या और क्षेत्रफल

सामाजिक समूह : सभी
लिंग : सभी

संख्या '000 की इकाई में
क्षेत्रफल '000 हेक्टेयर में

क्र. सं.	जोतों का आकार	व्यक्तिगत जोत		संयुक्त जोत		कुल जोड़ (निजी + संयुक्त)		संस्थागत जोत		कुल जोतें	
		संख्या	क्षेत्र	संख्या	क्षेत्र	संख्या	क्षेत्र	संख्या	क्षेत्र	संख्या	क्षेत्र
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
1	0.5 से कम	50245	11618	7315	1848	57559	13465	116	21	57675	13486
2	0.5 - 1.0	22384	15970	3600	2544	25984	18514	35	26	26019	18540
	सीमांत	72628	27588	10915	4392	83543	31980	151	46	83694	32026
3	1.0 - 2.0	20914	28851	2982	4202	23896	33054	33	47	23930	33101
	छोटे	20914	28851	2982	4202	23896	33054	33	47	23930	33101
4	2.0 - 3.0	8370	19691	1297	3139	9667	22830	17	41	9684	22872
5	3.0 - 4.0	3740	12609	693	2383	4433	14992	10	34	4443	15026
	अर्द्ध मध्यम	12110	32300	1990	5522	14100	37823	27	75	14127	37898
6	4.0 - 5.0	2159	9423	411	1827	2570	11250	7	32	2577	11282
7	5.0 - 7.5	2260	13439	469	2846	2729	16285	9	57	2738	16342
8	7.5 - 10.0	849	7152	206	1757	1054	8909	6	51	1060	8959
	मध्यम	5267	30014	1086	6430	6353	36443	22	140	6375	36583
9	10.0 - 20.0	675	8689	211	2815	886	11504	10	142	896	11646
10	20.0 & अधिक	117	3553	70	2273	187	5825	12	1244	200	7069
	बड़े	793	12241	281	5088	1073	17329	22	1386	1096	18715
11	सभी वर्ग	111712	130994	17255	25635	128966	156629	256	1694	129222	158323

नोट : 1. कुल योग लगभग में, 2.

जब से मानव सभ्यता शुरू हुई है तभी से कृषि के साथ-साथ पशुपालन, डेयरी और मछलीपालन की गतिविधियां मानव जीवन का एक अभिन्न अंग रही हैं। इन गतिविधियों में न केवल खाद्यान्न और भारवाही पशुशक्ति ने अपने योगदान को बनाए रखा है बल्कि पारिस्थितिकी संतुलन भी बनाए रखा है।

(यूरिया, डीएपी आदि) ग्रीनहाउस प्रदूषण का सबसे बड़ा स्रोत हैं। गोबर खाद के प्रयोग से हम इस प्रदूषण से भी बच सकते हैं। इसकी एवज में कार्बन फुटप्रिंट के रूप में देश को अतिरिक्त आय भी हो सकती है।

खेती में गाय के उपयोग से एक बड़ा फायदा पानी की बचत का है। गोबर खाद से की जाने वाली खेती में पानी की आवश्यकता काफी कम होती है- रासायनिक खेती की तुलना में एक चौथाई। इसका सीधा फायदा किसानों को होगा। पानी के लिए उसे बिजली की जरूरत कम पड़ेगी जिससे उसकी खेती की लागत घट जाएगी। इस प्रकार गाय से किसानों को खाद, कीटनाशकों और पानी-बिजली की लागत की सीधी बचत होगी जिससे उसे कम से कम खेती करने के लिए कर्ज़ लेने की जरूरत नहीं रहेगी।

इसके अलावा गाय का दूध किसान के लिए एक अतिरिक्त उत्पाद है। गाय अगर कम दूध देने वाली हो तो भी उसके परिवार के लिए वह पर्याप्त दूध दे सकती है। यदि अधिक दूध देने वाली गाय हो तो वह उसके लिए अतिरिक्त आय का साधन हो सकती है। साथ ही दूध एक उत्तम भोजन है। यह अन्न से श्रेष्ठ भोजन है। केवल अन्न का सेवन करने वाला कुपोषण का शिकार हो सकता है परंतु केवल दूध का सेवन करने वाला नहीं।

इस प्रकार गाय लोगों को कम ख़र्च में अच्छा भोजन देती है। खाद्य सुरक्षा के लिए इसका कोई विकल्प नहीं है। खाद्य सुरक्षा में सबसे महत्वपूर्ण बात है जीरो फूड माइल यानी कि निकटतम दूरी में भोजन की उपलब्धता की। इसे सुनिश्चित करने का एक मात्र विकल्प गाय है। हर घर में गाय हो तो उस घर में भोजन उपलब्ध है। साथ ही गाय का कृषि में उपयोग स्थानीय स्तर पर कृषि-उत्पाद बढ़ाने में सहायक होगा। इससे किसानों को गांव में ही भोजन के लिए अन्न भी उपलब्ध हो जाएगा।

गाय गांवों में कुटीर उद्योगों को भी बढ़ाने में सहायक होगी। आज गाय के गोबर और गोमूत्र से कई प्रकार के उत्पाद बनाए जा रहे हैं, जो न केवल काफी उपयोगी हैं, बल्कि वे पर्यावरण के अनूकूल भी हैं। अनेक गोशालाओं में इस पर कई प्रयोग हुए हैं। इस समय गाय के गोबर से निम्नलिखित वस्तुएं बनाई जा रही हैं: मच्छररोधी क्वायल, डिस्टेंपर (सादा व आयल), नहाने का साबुन, फेस पाउडर, धूप स्टिक व धूप कांडी, हवन सामग्री, समिधा, पूजन लेप, गोमय कंडे, मुक्ता पाउडर, मूर्तियां, पौधों के लिए गमले, दंत-मंजन, कागज (उत्तम कोटि का), विभिन्न प्रकार के टाइल्स (खपरैल, पानी, आग व ध्वनि रोधक तथा रेडिएशन मुक्त), पैकिंग का समान, नालीदार चादरें, जमीन पर बिछाने की मैटिंग, छत पर लगाने के पदार्थ (रूफिंग मैटेरियल), कमरा ठंडा रखने के खपरैल, बंकर्स के लिए टाइल्स। गोमूत्र से भी अनेकानेक वस्तुएं बनाई जा रहीं हैं: अर्क, फिनाइल (सफेद व काली), नील, हैंडवॉश, ग्लास क्लीनर, नेत्र ज्योति, कर्ण सुधा, घनवटी, अन्य सुरक्षा, खुरपका, मुंहपका आदि पशुओं के अन्य रोगों की दवाएं, विभिन्न कीट नियंत्रक (पेस्टीसाइड्स), आफ्टर शेव लोशन, मरहम, बाम इत्यादि। इसके अतिरिक्त गोमूत्र का चिकित्सा में उपयोग तो आज विश्व प्रसिद्ध हो चुका है। इस पर गोसंवर्धन केंद्र, नागपुर ने अमेरिका में कई पेटेंट भी लिए हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अठारहवीं शताब्दी तक देश में खेती और उद्योगों का जो शानदार समन्वय था और जिसके कारण भारत में इतनी समृद्धि थी उसका एक महत्वपूर्ण कारक यहां की गोसंपदा भी थी। आज भी यदि बेवजह यांत्रिकीकरण और रसायनों के उपयोग को बढ़ावा देना बंद कर दें तो सबसे पहला लाभ तो हमारी अर्थव्यवस्था में उन एक लाख करोड़ रुपयों का हो सकता है जो कृषि अनुदान के नाम पर बहुराष्ट्रीय खाद निर्माता कंपनियों को दिए जाते हैं। उस एक लाख करोड़ रुपये का अगर एक प्रतिशत भी गोपालन में सहायता के नाम पर सीधे किसानों को दे दिया जाए तो वह स्वावलंबी तो बनेगा ही देश की अर्थव्यवस्था को भी मजबूत कर देगा।

महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज का जो चित्र खींचा है उसमें ग़रीबी उन्मूलन का सीधा फार्मूला दिया गया है। स्वाधीनता के बाद से लेकर आज तक देश की जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत गांवों में रहता है जो आजीविका के लिए खेती पर निर्भर है। महात्मा गांधी ने खेती और पशुपालन को जोड़ कर देखने का सुझाव दिया था।

गाय, ऊर्जा और स्थाई विकास

आज देश की ऊर्जा जरूरतें बढ़ रही हैं और उन जरूरतों को पूरा करने के लिए देश की नदियों, पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के साथ-साथ देश के स्वाभिमान को भी बलि चढ़ाना पड़ रहा है। यदि गोवंश के रूप में उपलब्ध पशु ऊर्जा को विकसित किया जाए तो इन सबसे बचा जा सकता है। परिवहन के साधन के रूप में बैलों का अपना महत्व है। राजधानी दिल्ली में भी बैलगाड़ियां चलती खूब दिखती हैं। ऐसे में उसे सिरे से नकारना भी न्यायोचित नहीं लगता है। भारत के 6 लाख गांवों में से अधिकांश में यातायात योग्य डामरवाली सड़कें नहीं हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में जहां घोड़े कदम नहीं रख सकते, बैल आसानी से गाड़ियां खींच सकते हैं। बैलगाडियों का संवर्धन कर सड़कों के निर्माण और उनके बारंबार होने वाले पुनरुद्धार पर होने वाले ख़र्च को सीमित किया जा सकता है।

गोवंश से प्राप्त गोबर से बनाई गई गैस से बिजली का उत्पादन तो आज काफी प्रसिद्ध हो चुका है। पड़ोसी देश नेपाल में सभी 75 जिलों में गोबर गैस से बिजली बनाई जा रही है और इससे घर-घर में रसोई गैस की समस्या का समाधान किया जा रहा है और बिजली भी उपलब्ध कराई जा रही है। इसके लिए उसे अंतरराष्ट्रीय एशडेन पुरस्कार भी मिला है। नाभिकीय ऊर्जा जैसे खतरनाक साधनों पर दिमाग चलाने की बजाय यदि गोबर गैस पर काम करें तो इससे गांवों में रोज़गार का भी सृजन होगा और बिजली भी मिलेगी। एलपीजी पर देश की निर्भरता को समाप्त करने के लिए गोबर गैस से बढ़िया और कोई विकल्प नहीं है। इसके अलावा गोबर गैस से ऑटो रिक्शा चलाने का प्रयोग भी सफल रहा है। ❑

(लेखक इंस्टीच्यूट फॉर ह्यूमन एडवांसमेंट में शोध समन्वयक हैं।
ई-मेल : ravinoy@gmail.com)

IAS PCS

भारत का एकमात्र सेवार्थ संस्थान
जो "न्यूनतम शुल्क पर अधिकतम गुणवत्ता" हेतु प्रतिबद्ध है

KUMAR'S IAS

KUMAR'S IAS में Fee अन्य संस्थानों की तुलना मे कम क्यों?

क्योंकि

KUMAR'S IAS की स्थापना **Kumar Sir** द्वारा **2006** में अपनी **Mother** की प्रेरणा से की गई थी, और उन्हीं के कहने पर **Kumar Sir** ने संस्थान को केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को ध्यान में रखकर संचालित किया लेकिन कुछ समय पूर्व उनकी **Death** हो जाने के कारण आज भी **Kumar Sir** उनके सपने को पूरा करने के लिए संस्थान को सेवार्थ भावना पर ही संचालित कर रहे है। इसलिए कोई भी अभ्यर्थी **KUMAR'S IAS** में आकर कम **Fee** के बारे में कोई प्रश्न न करें और ना ही अन्य संस्थान **KUMAR'S IAS** की सेवार्थ भावना पर कोई टिप्पणी करें।

उपलब्ध विषय, Fee व कोर्स अवधि

विषय	Fee	अवधि
सामान्य अध्ययन (मुख्य परीक्षा)	₹ 15,500	5 माह
सामान्य अध्ययन (प्रारंभिक सह मुख्य परीक्षा)	₹ 20,500	8 माह
लोक प्रशासन (मुख्य परीक्षा)	₹ 15,500	4 माह
CSAT	₹ 12,500	3½ माह
BPL, SC, ST, OBC तथा Female को इस Fee में 25% Discount मिलेगा।		

अभ्यर्थी ध्यान दें **Admission** "पहले आऐं व पहले पाऐं" के आधार पर होगें अतः बैच में **Seat Full** हो जाने के बाद किसी भी प्रकार की सिफारिश को स्वीकार नहीं किया जाएगा।

बैच प्रारम्भ : 15 Nov.

एक बार पुनः कम Fee में उच्चतम गुणवत्ता का उत्कृष्ट परिणाम

Rank-4 (BPSC) Md. Mustaque

Rank- 97

Result CSE-2012

Jafar Malik
Roll No.: 038816

Sakthi Ganesan S
Roll No.: 020243

Rank- 131

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2012 में सफल अन्य अभ्यर्थी

अभ्यर्थी ध्यान दें **Admission** कराने के लिए **1 Photo** व **Total Fee** का **20% Amount** अवश्य साथ लायें...

अभ्यर्थी ध्यान दें **Admission** कराने के लिए **1 Photo** व **Total Fee** का **20% Amount** अवश्य साथ लायें...

KUMAR'S IAS

A-31/34, Basement Arya Gas Agency, Behind Post Office, Jaina Extension Complex, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09
Email : kumariasacademy@gmail.com
Website : www.kumarsias.com
011-47567779

24×7 Helpline : 0-8882388888
0-888-222-4455
0-888-222-4466
0-888-222-4477
0-888-222-4488

YH-150/2013

छोटे राज्यों की मांग और खतरे

● गुलजीत के. अरोड़ा

भारत का लिखित संविधान है और तीन स्तरों वाला उसका संघीय ढांचा है, जो घटक इकाइयों की काफी हद तक प्रशासनिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता तथा उनकी घरेलू राजनीतिक रूपरेखा तैयार करने में सफल रहा हैं लेकिन पिछले दिनों जिस तरह से भारतीय परिसंघ की राजनीतिक अर्थव्यस्था और संघ ने काम किया है, और जिस प्रकार का राज्य शासन प्रस्तुत किया है, उससे आर्थिक और सामाजिक लाभों की अवास्तविक स्थिति का पता चलता है और जान पड़ता है कि राजनीतिक रूप से रियायतें पाने के लिए इसे इसको अपनी सुविधा के अनुसार प्रयोग किया गया है (कुमार 2009)। लोगों का विश्वास ''राज्य'' मे कम हुआ है, और वह राज्य जो लोगों की उम्मीदों के लिए माकूल माहौल दे सकता है, नहीं दिखाई दिया है (महाजन 1999)।

भूमंडलीकरण और दिये गये संक्रमण काल के दौरान कहा जाता है कि असमानता की समस्या ज्यादा जटिल हो गई है। ग़रीब क्षेत्रों में ख़ास तौर से ग़रीब ज़्यादा ग़रीब हो गए हैं। वह क्षेत्र विकास के रास्ते आगे नहीं बढ़ पाया हैं, भले ही नीति के अनुसार सभी क्षेत्रों का विकास संतुलित होना चाहिए और सभी क्षेत्रों मे केंद्रीय सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश समान महत्वपूर्ण होना चाहिए। अगर मान लें कि जनसंख्या का विस्तार एक समान नहीं रहा हो और भौगोलिक क्षेत्र सामाजिक रूप से भेदभाव का सामना करते रहे, तो लोगों की सामान्य आर्थिक हताशा और आबादी के कुछ समूहों का ऐसे में आशंका बढ़ जाती है कि गलत फायदा उठाने लगे और सत्ता में बने रहने के लिए शासनतंत्र का घोर दुरुपयोग, तथा लगातार बढ़ रही बहुदलीय व्यवस्था के राजनीतिक रूप के कारण दुरुपयोग करें। ऐसी हालत में लोग क्षेत्रीय पहचान बनाए रखने के लिए तथा छोटी प्रशासनिक इकाइयां बनाए रखने के राजनीतिक तर्क देते रहेंगे। इनका लोगों में प्रचार होने पर आंदोलन छेड़े गए और राजनीति नेताओं क्षेत्रीय स्तर पर नयी प्रशासनिक इकाइयों के लिए दबाव बना सकते हैं।

राज्य पुनर्गठन और इतिहास

संविधान सभा की प्रारूप समिति ने सिफारिश की थी कि एक भाषाई प्रांत आयोग गठित किया जाए। इसे उस समय डार आयोग कहा गया था। डार आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि वर्तमान परिस्थितिथियों में किसी पुनर्गठन की ज़रूरत नहीं है। और इस बात पर बल दिया कि ''जो भी उस समय राष्ट्रीयता वृद्धि में सहायता करती थी, उसे आगे बढ़ाना था और जो भी इसके रास्ते आड़े आती थी, उसे नामंजूर करना था (एस आर सी 1955, पृष्ठ 15)। कांग्रेस ने एक और समिति दिसंबर 1948 में जयपुर अधिवेशन के समय नियुक्त की। इसे जेबीपी समिति कहा गया। इस समिति ने भाषा के आधार पर प्रांतों के गठन पर विचार किया। साथ ही, डार आयोग की रिपोर्ट और समस्याओं पर भी ध्यान दिया जो आज़ादी के बाद से नज़र आ रही थीं। समिति ने चेतावनी दी कि भाषाई आधार का अनुसरण नहीं किया जाना चाहिए और देश की एकता, सुरक्षा और आर्थिक समृद्धि पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इस समिति ने आंध्रराज्य के गठन पर और आंध्र प्रांतीय कांग्रेस, तमिलनाडु कांग्रेस तथा मद्रास सरकार के असर के कारण सहमति ज़ाहिर की लेकिन समिति ने कर्नाटक राज्य के गठन पर सहमति नहीं ज़ाहिर की क्योंकि मैसूर राज्य में जनमत इसके पक्ष में नहीं था (एस आर सी 1955)।

दिसंबर 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की नियुक्ति की गई और श्री ए.बी. पई को इसका सचिव बनाया गया। इस आयोग को भारतीय संघ के राज्यों के पुनर्गठन पर विचार करना था ताकि पूरे देश के लोग अपने आप को एक घटक इकाई समझें। समिति ने सिफारिशें कीं कि राज्यों के पुनर्गठन की समीक्षा की जाए और उनकी तार्किकता की जांच की जाए।

राज्यों के गठन में महत्वपूर्ण बातें

हाल के वर्षों में छोटे राज्यों और राजनीतिक विकेंद्रीकरण के लिए दबाव मौजूद रहा है, और बढ़ा है, इसलिए इसके कारणों की समीक्षा करना और निर्णय प्रक्रिया में इसके गतिशील संबंधों की समीक्षा करना उपयोगी होगा, क्योंकि यह राज्यों के पुनर्गठन और उनकी सीमाओं में फेरबदल से सीधे-सीधे जुड़ा हुआ है। इसके कुछ महत्वपूर्ण कारक नीचे दिए जा रहे है-

1. भाषा-भाषा जनता की भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है और इससे उनकी संस्कृति झलकती हैं। भाषा किसी राज्य के पुनर्गठन का न्यायोचित आधार होती है, जिनमें प्रशासन का

सुविधाजनक कारण, एक महत्वपूर्ण संपर्क, और अंबेडकर के शब्दों में साथ का एहसास (फेलो फीलिंग) जगाने वाली समानता शामिल है। तथापि, एक ही सर्वग्राही भाषा का तर्क भी दिया जा सकता है और इतिहास की चुनौतियां और मौजूदा समरसता और एकता तथा समानता के तर्क भी भारी पडते हैं।

2. जनता के सांस्कृतिक पक्ष–सामान्य तौरपर सांस्कृति में सभी मूल्य शामिल होते हैं जो व्यवहार संबंधी पक्ष और परिपाटियों से संबंधित होते हैं। इनका संबंध जनता के विश्वास, आादतों, नैतिक शिक्षाओं, कानूनों और परिपाटियो से होता हैं। इनका संबंध समाज के उन व्यक्तियों के कला और तथ्यों से भी होता है। जो सीधे-सीधे जनजीवन में प्रकट होते हैं, और जिनका संबंध प्रशासनिक गतिविधियों से भी होता है। लेकिन भाषा में स्थानीय बोलियां, परिपाटियां और परंपराएं तथा कलारूप शामिल होते हैं, अत: इनके आधार पर राज्यों का पुनर्गठन महत्वपूर्ण हो जाता है लेकिन वांछनीय यह होता है कि व्यक्तिगत लक्षणों को बनाए रखते हुए मिली जुली राष्ट्रीय संस्कृति को बढ़ावा दिया जाए।

3. प्रशासनिक और आर्थिक संभाव्यवता–आर्थिक सक्षमता के लिए ज़रूरी है कि (1) राज्य का राजस्व पर्याप्त हो। कर्ज चुकाने के बाद बराबर हो, (2) इतने आर्थिक संसाधन जुटाए जा सकें जो कि लोगों की सेवा के न्यूनतम मानक पूरे कर सकें (3) इतना राजस्व जुटा सके जो न्यूनतम वृद्धि और विकास की दर सुनिश्चित कर सके तथा (4) इतना राजस्व जुटा सके जो उसे केंद्र सरकार के अनुदानों पर निर्भर न बनाए।

4. एकता, सुदृढ़ता और राष्ट्रीय सुरक्षा– घटक इकाइयों की प्रशासनिक सीमाओं में फेरबदल करने की किसी स्कीम में एकता और सुदृढ़ता बहुत महत्वपूर्ण होती है। इनमें प्रशासनिक, राजनीतिक और समाजिक संरचनाएं शामिल होती हैं जिनमे राष्ट्र को प्रमुखता दी जाती है। और भाषाई संकीर्णता और प्रांतवाद को हतोत्साहित किया जाता है, जिससे भाषा संस्कृति और लोगों की परंपराओं को काफी महत्व मिल जाता है।

5. प्रशासनिक इकाई की समीपता और भौगोलिक आकार–भारत जैसी किसी संघीय अर्थव्यस्था के ठीक-ठाक काम करने के लिए जरूरी है कि उसका भौगोलिक आकार समुचित हो। क्योंकि यह ऐसा घटक है जो सभी छोटे राज्यों पर लागू होता है अत: इसे विस्तार से नहीं बताया जा रहा है।

किसी छोटे राज्य में राज्य के लोग नौकरशाही से झगड़ सकते हैं और यहां तक राजनीतिक माफिया और भ्रष्टाचार से सीधे सीधे निपट सकते हैं। यह ख़ास तौर से तब संभव है जब उद्देश्य संतुलित विकास हो और जब ख़ास तौर से देश के राज्यों में समाज बंटा और उसमें विषमताएं मौजूद हों। आवंटनीय कुशलता बढ़ाना आसान होता है तथा सरकार की प्रभावशीलता और संसाधान जुटाने की क्षमता और जिम्मेदारी को लागत प्रभावी बनाया जा सकता है। लोगों का प्रशासनिक कौशल बढ़ाने की परीक्षण भी किए जा सकते तथा संस्थागत परिवर्तन भी संभव है जिनका कि अन्य क्षेत्र अनुसरण कर सकते हैं। केंद्र सरकार के लिए केंद्र के पास उपलब्ध सूचनाएं और जानकारियां देना आसान नहीं होता और केंद्र सरकार की राजनीतिक दबाव झेलने की क्षमता और संवैधानिक कारणों को सीमित बनाने की क्षमता कम होती है (ओटस 1998)।

इसके विपरीत अगर छोटे राज्य राज्यों का सशक्तीकरण कर दिया जाए, और सामान्य मुद्रा और वित्तीय पक्षों में उन्हें सशक्त बना दिया जाए तथा घरेलू और विदेशी ऋण लेने की सुविधा प्रदान कर दी जाए। कराधान में छूट दे दी जाए और इस तरह से माईक्रो-इकोनॉमिक स्थिरता सुनिश्चित कर दी जाए तो चिंता की कोई बात नहीं (प्रूंडहोम 1995)। इस प्रकार से जो असमानताएं लोगों और क्षेत्रों में पैदा हो, उन्हें दूर करना ज़रूरी नहीं क्योकि अमीरों पर ज्यादा टैक्स लगाए जाते हैं और इस तरह से आय का वितरण बेहतर होता है। ऐसा करने से अमीर लोग उन क्षेत्रों को चले जाएगें जहां टैक्स कम लगता है। इस तरह से छोटे राज्यों की मांग एक अनवरत प्रक्रिया बन जाएगी। ऐसा तब और ज़्यादा संभव है जब राज्य की नीतियों और देश की नीतियों को अनेक जातीय आधार पर बांट दिया जाए। गुजरात, संयुक्त महाराष्ट्र विशाल आंध्र जैसी आदि राज्यों की मांग स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उठने लगी थी हालांकि उस समय बड़े राज्यों की ज़रूरत थी (कुमार 2000:22)।

अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि छोटे राज्यों में लोगों की पसंद का ध्यान रखा जाता है और ख़ास तौर प्रशासन चलाया जाता है। अत: वह ज्यादा कुशल व आर्थिक रूप से संवदेनशील होता है। कहा जाता है कि लोगों की पसंद की झलक प्रशासन में मिलती है और उत्पादन लागत प्रभावी नहीं होता। योग्य व्यक्ति, कुशल जनशक्ति और टेक्नोलॉजी में बरता जाने वाला नवाचार हो सकता है कि उपलब्ध न हो। कम मात्रा में भ्रष्टाचार और वित्तीय परिपाटियां मौजूद होती हैं लेकिन लोग स्थानीय राजनीतिक नेताओं और स्थानीय नौकरशाहों तक पहुंच बना लेते हैं।

इस बात पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि विभिन्न घटक इकाइयों के विकास का अनुभव साबित करता है कि आर्थिक परिवर्तन आकार के अनुरूप और भौगोलिक तथा वास्तविक रूप में ठोस हो सकते हैं। आखिरकार, यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है कि वह प्रशासनिक यूनिट आकार में कितनी भी हो, लेकिन गुण दोष के आधार पर उसपर विचार किया जाता है।

6. ऐतिहासिक परिपाटियां–इतिहास किसी क्षेत्र को एकता के सूत्र में बांधता है, इसकी परिपाटियां सामान्य चेतना को मजबूत बनाती हैं। लेकिन, इस बात को कितना महत्व दिया जाएगा, इसके बारे में ज्यादा कुछ नहीं कहा जा सकता।

7. संवैधानिक रचना और देश–भारतीय संविधान के साथ देश का 6 दशकों का अनुभव है। इससे ज़ाहिर होता है कि केंद्र देश की एकता और सुदृढता की रक्षा तब कर पाएगा जब संविधान में संशोधनों की गुंजाइश हो और राज्यों में पर्याप्त लचीलापन मौजूद हो। संसद को समवर्ती सूची में कानून बनाने का अधिकार होता है और गंभीर आपात की हालत में अगर स्थिति के अनुसार ज़रूरत हो तो राज्यसभा के सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत के अनुमोदन से राज्यों की सूची पर भी कानून बनाए जा सकते हैं।

भारत का भूमंडलीकरण और सामाजिक आर्थिक वास्तविकताएं

राज्यों के पास वित्तीय अंतरण की क्षमता कम होती है, और उन्हें मानव, के प्रत्यक्ष और वित्तीय संसाधनों पर ज़्यादा निर्भर करना होता है। कमजोर राज्यों के संसाधन कम होते हैं और नये निवेश आकर्षित करने के लिए उनमें

प्रतियोगिता क्षमता नहीं होती जिससे स्वास्थ्य, शिक्षा और आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं के क्षेत्र में वह अधिक ख़र्च नहीं कर पाते (राव और चक्रवर्ती 2006)। कुछ राज्य अपने कर कानूनों को कमज़ोर बनाकर वित्तीय रियायतें देकर विदेशी निवेश आकर्षित कर सकते हैं, लेकिन ग़रीब राज्यों के लिए ऐसा करना संभव नहीं होता और ऐसा नहीं करते हैं, तो उन्हें उपभोक्ता क्षेत्रों में सामाजिक निवेश की गड़बड़ी का सामना करना पड़ सकता है। अब जबकि राष्ट्र राज्य कम महत्वपूर्ण हो रहे हैं और कमजोर राजनीतिक स्तर पर विवाद प्रबंधन में कमज़ोर हो रहे हैं, उनके सत्ताधारी लोगों की ताक़त घट रही है। (ओईसीडी 2001)

एक उत्पादक, प्रोत्साहक, विनियामक के रूप में राज्य की भूमिका भूमंडलीकरण के कारण घट जाती है और सार्वजनिक वित्त पर ग़रीब क्षेत्रों में दबाव और कम हो जाता है जिससे सुशासन व्यवस्था में परिवर्तन आता हैं। अगर मान लें कि आर्थिक विषमताएं राज्य भर में असहनीय स्तर पर पहुंच गई हैं, और पहचान राष्ट्रवाद की ओर बढ़ रही गठबंधन की राजनीति और सामाजिक विभेदन के कारण बढ़ रही है, तो अपेक्षाकृत उच्च स्तर की आय वाले राज्यों में अलग राज्य की मांग बढ़ेगी उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में मराठवाडा के विदर्भ और आंध्र प्रदेश में तेलंगाना और रायलसीमा, पूर्वी उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल कर्नाटक में उत्तरी कर्नाटक का उदाहरण दिया जा सकता है जो राज्य विकास प्रक्रिया का दोहरा रूप है। (कुरियन 2000)।

1992 में संविधान में 73वें और 74वें संशोधन किए गए। उनके जरिये स्थानीय लोगों को संविधान के अनुकूल अपनी योजनाएं बनाने का अधिकार दिया गया। लेकिन यह सामान्य जन के लिए भ्रामक बना हुआ है। 13वें वित्त आयोग ने लोगों को इस समस्या की गंभीरता से अवगत कराया। इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं सांसदों और विधायकों की स्थानीय क्षेत्र विकास योजनाएं। किसी ने सोचा भी नहीं था कि इनमें भ्रष्टाचार इस तरह बढ़ जाएगा कि सरकारी सेवक भी इसमें अपना हिस्सा मांग सकते हैं जो सांसदों और विधायकों से ज्यादा वैध जान पड़ता है।

क्षेत्रीय चेतना गहरी गठबंधन की राजनीति में धरतीपुत्र की नीति के जरिये गहरी पैठ बना चुकी है। स्थानीय और क्षेत्रीय देशभक्ति और वफादारी की संस्कृति क्षेत्रीय संघर्ष के लिए दुश्मनी का आधार बन गई है। 2007 में महाराष्ट्र में प्रवासियों के खिलाफ जब हिंसा ने विकराल रूप धारण किया तो उत्तर भारतीय प्रवासियों के खिलाफ जो आंदोलन चला, वह इसका एक उदाहरण है।

उच्च प्रकार का सामाजिक भेदभाव राजनीतिक विभेद की भावना को तेज करता है। अब जबकि देश भर में 170 क्षेत्रीय और अमान्यता प्राप्त, 36 राज्यस्तर के और 6 राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल मौजूद हैं, गठबंधन की राजनीति देश में राजनीतिक सुशासन का पर्याय बन गया है लेकिन इन सामाजिक और राजनीतिक विशेषताओं का दुरूपयोग किया जा रहा है। भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अखंडता से संबंधित दूरदृष्टि गायब है। विषमता में समता नहीं है और अधिक जटिल हो गई है। शिक्षा को फूट डालने का साधन बना दिया गया है क्योंकि अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में सिर्फ धनी लोगों के बच्चे ही पढ़ पाते हैं।

राजनीतिक दल बहुत बढ़ गये है और तानाशाही के साधन बन गये हैं। उनमें आंतरिक लोकतंत्र और जवाबदेही नहीं है। पूरे राजनीतिक तंत्र में लोकसभा सदस्य महत्वपूर्ण बन गए हैं। वयस्क मतदान के जरिये मतदान व्यवस्था और चुनाव क्षेत्रों के इलाकों में वोट बैंक बनाने के लिए पूरे इलाके में विवादास्पद राजनीतिक मुद्दे फैला दिए गए हैं, और जाति आधारित आरक्षण अब सामान्य बात हो गई है। भारत जेसे देश में जहां धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत और लोकतंत्रीय संघीय संरचना प्रमुख हैं, इनकी अनदेखी नहीं की जा सकती।

चुनावों में अत्यधिक धनबल, बाहुबल और धनशक्ति के इस्तेमाल से राजनीतिक हिंसा और राजनीतिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है और उभर रहे राजनीतिक नेता जिन पर आपराधिक आरोप भी होते हैं, संसद पहुंच जाते हैं और गंभीर राजनीतिक दल जो धीरे-धीरे अपना राजनीतिक महत्व खो रहे हैं, उन्हें अपना लेते हैं। यह लोकसभा व संसद की कार्यवाही पर दुखद टिप्पणी है कि दिसंबर 2009 में 34 सदस्यों के सूचीबद्ध प्रश्न छोड़ देने पड़े क्योंकि प्रश्नकाल के दौरान नाम लेने पर वे उपस्थित नहीं थे। संसद चलाने में एक घंटे की लागत 14,00,000/- रुपये आती है (इकोनांमिक टाइम्स 01.12.2009) वर्ष 2000 में लोकसभा सिर्फ 92 घंटे चली और इसमें 24 दिनों के अंदर 45 घंटे का व्यवधान रहा। (हिंदुस्तान टाइम्स, 8 अगस्त 2009, पृष्ठ-8) । चुनाव के बाद थकावट के चिह्न भी नज़र आते हैं जिससे लोगों की रुचि संसद की कार्यवाही में कम होती है। (यादव 1999, पृष्ठ 2393)।

सरकार के सभी तीन स्तरों पर संघर्ष की स्थिति दिखाई दी है और काफी परिवर्तन नज़र आया लेकिन संघर्ष शमन के साधन तुष्टीकरण की नीति बने रहे। क्षेत्रीय गुटों में अपनी संस्कृति और ऐतिहासिक जड़ें प्रदर्शित की और वे अब ज्यादा ढीठ हो गए हैं। सार्वजनिक नीति निर्धारण, का माहौल बिगड़ गया है। (कोठारी, 2001), और संघर्ष प्रबंधन काफी जटिल हो गया है ख़ासतौर से स्थानीय हितों और उन पूर्वाग्रहों को देखते हुए, जिससे यह क्षेत्रीय राजनीतिक दल प्रेरणा लेते हैं और अपनी राजनीति को आगे बढ़ाते हैं, (सांघवी और ठक्कर 2000)। इन घटनाक्रमों का नतीजा यह होता है कि गंदी राजनीति और भ्रष्ट राजनीतिक परिपाटियों के साथ भागीदारी बढ़ जाती है और नौकरशाह भी इसमें शामिल हो जाते हैं तथा सार्वजनिक नीति निर्धारण, का माहौल ख़राब हो जाता है जो सरकारी सुशासन नीति से सृजित होता है। यह सुशासन काले धन और राजनीतिक भ्रष्टाचार को रोकने में विफल रहा है।

आर्थिक मोर्चे पर हताशा और शोषण बढ़ रहा है जो सीधे-सीधे जातीय, क्षेत्रीय, धार्मिक और भाषाई समूहों से जुड़ा होता है। जातीय और धार्मिक ताक़तों द्वारा जो सद्भाव विरोधी भावना पैदा की जाती है उससे ऐसा करने वालों को राजनीतिक लाभ होता है। राजनीतिक उद्देश्य छोटी प्रशासनिक इकाइयों के रूप में बदले जा सकते हैं लेकिन इसके लिए लोगों को मतदान और प्रशासन की व्यवस्था देनी होगी और इससे भले ही राज्य की राजनीतिक अर्थव्यवस्था प्रबंधन की क्षमता क्षय होती हो (सेन, 1998)। भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शिनिक, कला और संगीत संबंधी तथा ऐसे ही केंद्रीय मूल्य जो सद्भाव समानता, समूह, लोकतंत्र, प्राकृतिक स्थिति, जातीय जीवन और सामूहिक भागीदारी में दिखाई पड़ते हैं, लुप्त

हो जाते हैं। (रायचौधरी 1992)।

दीर्घ अवधि में हो सकता है कि छोटी प्रशासनिक इकाइयों की मांग मानने के अलावा कोई और रास्ता ना बचे। इस संदर्भ में तेलंगाना का जिक्र करना ज़रूरी जान पड़ता है। यह मांग लगभग आधी सदी पुरानी है और इसके लिए बड़े जन आंदोलन और गंभीर राजनीतिक समर्थन मिल चुके हैं। जुलाई 2013 में कांग्रेस कार्यकारिणी ने ऐलान किया कि वह अलग राज्य बना देंगे। इसको लेकर लोकसभा में तेलंगाना विरोधी सदस्यों ने हंगामा किया इनमें कांग्रेस और तेलुगुदेशम दोनों दलों के सांसद शामिल थे इसके परिणामस्वरूप कार्यवाही में बाधा पड़ी और 12 सदस्यों को पांच कार्य दिवसों के लिए निलंबित किया गया। भारत के राजनीतिक इतिहास से ज़ाहिर होता है कि प्रशासनिक कुशलता और तेज आर्थिक विकास उपउत्पाद रहे हैं। ये सचमुच के कारण कभी नहीं रहे और इस तरह की शुरुआत के लिए प्रमुख कारण कभी नहीं बनें (कुमार 2000:3081)। दुर्भाग्य की बात है कि राजनीतिक गणित के विशेषज्ञों ने मौके का फायदा उठा कर इसका शोषण जब भी सुविधाजनक जान पड़ा, किया और ऐसा करते हुए मुख्य महत्वपूर्ण मुद्दे का निर्धारण किया।

निष्कर्ष, चुनौतियां और भावी संभावनाएं

भारत में भूमंडलीकरण निस्संदेह बढ़ चला है और यह विकास के स्तर पर आ गया है। लेकिन इसे बहुत गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। ये चुनौतियां अंतरराज्यीय विषमताओं, बड़े पैमाने पर बेरोज़गारी, निरक्षरता, निर्धनता, लोगों की बुनियादी ज़रूरतों के प्रति राजनीतिक, आर्थिक संस्थानों की असंवेदनशीलता और राजनीतिक भ्रष्टाचार के रूप में सामने आते रहते हैं। समावेशी विकास दूर की कौड़ी जान पड़ती है। कम विकास की प्रवृत्तियों के चलते राजनीतिक निराशा आती है जिससे लोगों में आर्थिक हताशा पैदा होती है। इस मामले में स्थानीय मीडिया को धन्यवाद देना होगा जिसके कारण स्थानीय स्तर पर सूचना क्रांति आई और राष्ट्रीय राजनीतिक दावों को भी चुनौती मिली। देश की सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को देखते हुए आर्थिक हताशा ने राजनीति में घुसपैठ कर ली जिसका उत्कर्ष क्षेत्रीय आंदोलनों के ज़रिये छोटे राज्यों की मांग में दिखाई दिया। एक राजनीतिक अवसरवाद के साधन के रूप में इनका आसानी से शोषण किया जाता रहा है।

अगर विकेंद्रीकरण के लिए राजनीतिक दबाव गंभीर हो और सामाजिक आर्थिक विकास की नीतियां आर्थिक वास्तविकताओं के अनुरूप न हों, तो किसी भी क्षेत्र के पुनर्गठन का मामला जटिल हो सकता है। लोग इसके आर्थिक सामाजिक परिणामों के बारे में संशय में हो सकते हैं और भूमंडलीकरण के दबावों के चलते उनकी गतिशीलता डगमगा सकती है। श्रीकृष्णा कमेटी के मामले में भले ही कमेटी ने परिश्रम से काम करके यह रिपोर्ट प्रस्तुत की हो, लेकिन तेलंगाना पर उसकी रिपोर्ट (2010), कोई प्रस्ताव नहीं पेश कर सकी उसने सिर्फ रायलसीमा, आंध्र और तेलंगाना इन तीन क्षेत्रों के विकल्प बताए।

छोटी इकाइयां आमतौर पर आर्थिकेतर उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सृजित की जाती है। इससे अक्सर उन समूहों का दबाव कम होता है जो जाति, वर्ण और संस्कृति भाषा धर्म आदि से जुड़ी होती हैं और आमतौर पर ऐसा राजनीतिक समीकरण प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश के बुदेलखंड के सांस्कृतिक रूप से हावी समूहों का उदाहरण दिया जा सकता है। राजस्थान के मेवाड़, मध्य प्रदेश के मालवा और बिहार के मिथिलांचल तथा कर्नाटक के ओल्ड मैसूर भी इसी वर्ग में आते हैं (कुमार 2000)। जातीय आधार पर राज्यों के सृजन से कुछ जातीय संघर्ष भी हो सकता है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में लोगों की जातीय महत्वाकांक्षाओं को संतुष्ट करने के लिए सात राज्य गठित किए गए। इनमें अब भी उठा पटक मची रहती है। (माधव 1999) । वहीं बोडोलैंड, पूर्व बुदेलखंड, गोरखालैंड, कौशल, हरितप्रदेश, मरु प्रदेश, मिथिलांचल, सौराष्ट्र, तेलंगाना और विदर्भ के गठन के बारे में दबाव जारी हैं। इनमें से अधिकांश मामलों में मांग गैर ज़रूरी नहीं है। ऐतिहासिक आधार, लंबे समय तक चले आंदोलन, आर्थिक उपयुक्तता का और लोगों की भाषा संबंधी पहचान को देखते हुए स्थानीय स्तर पर इन्हें उपयुक्त माना जा सकता है। देशवासियों को पता है कि ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अन्य ने इस तरह से स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक उनके लिए कोशिशें की थी।

हर मामले पर उसके गुण-दोषों पर विचार करते हुए और उसकी ख़ास बातों को ध्यान में रखते हुए जांच करनी होगी लेकिन किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले परिस्थितियों की संपूर्णता की अनदेखी नहीं की जा सकती। वो तब, जब आमतौर पर सभी कारक मान्यता प्राप्त हों। जरूरत इस बात की है कि राज्यों की सीमाओं में फेरबदल करना और नये राज्यों का सृजन एक ऐसा साधन माना जाना चाहिए जो लोगों को संतुष्ट करे और लोगों के उच्च स्तर के कल्याण को ध्यान रखे। छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तरांचल के गठन के समय भारत सरकार ने पश्चिम बंगाल, गोरखालैंड क्षेत्रीय प्रशासन के साथ अधिक स्वायत्तता देने का समझौता किया था। पश्चिम बंगाल के साथ जुलाई 2011 में किए गए इस समझौते के अनुसार गोरखालैंड के लोगों की अलग राज्य की महत्वाकांक्षाएं बढ़ गई हैं।

इस बात को भी उजागर किया जाना चाहिए कि प्रशासन की आंतरिक प्रशासनिक मानचित्र तैयार करते समय देश की एकता और अखण्डता के साथ कोई खिलवाड़ नहीं होना चाहिए। भौतिक और भावनात्मक रूप से भारत पूरी तरह से समेकित है और यह राजनीतिक और आर्थिक दृष्टियों से भी एकताबद्ध है। देश में कई बार राज्यों का पुनर्गठन किया गया है और इनकी संख्या 1950 में 14 और छः संघशासित प्रदेशों से बढ़कर आजकल 28 राज्य और 7 संघ शासित प्रदेश हो गई है।

इस प्रकार से नये छोटे राज्यों की सीमाओं का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। लेकिन यह एक संदर्भ विशेष में ही होना चाहिए और इसके लिए संपूर्ण परिस्थितियों, घटनाक्रमों और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिदृश्य का ध्यान रखा जाना चाहिए। जिन विशेष कारकों का ध्यान रखने की जरूरत है और जिन्हें इस काम में शामिल किया जाना चाहिए वे हैं भाषा और संस्कृति, देश की सुरक्षा, इतिहास, आकार और क्षेत्र की भौगोलिक समीपता, संविधान के मार्गदर्शक नियम और क्षेत्र विशेष से आते दबाव। आर्थिक संभाव्यता और प्रशासनिक क्षमता को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिए कि प्रशासनिक कारणों से कितने लोग विस्थापित

(शेषांश पृष्ठ 55 पर)

खेल और विकास

खेलों से भी बदल रहा है देश

● संजय श्रीवास्तव

हर समाज और समयकाल में खेलों की खास जगह रही है। दुनियाभर के ढेर सारे मुल्कों में खेल सामाजिक जागरूकता, उत्थान और समृद्धि का जरिया बन रहे हैं। खेलों ने हमारे देश में भी विकास में भूमिका निभाई है। इसके जरिए दूरदराज के इलाकों, गांवों, पिछड़े वर्ग के बीच आत्मविश्वास और आर्थिक तरक्की को गति मिल रही है।

प्राचीन काल से ही खेलों की मानवीय जीवन में खास भूमिका रही है। समय, समाज, संस्कृति और लोगों के लिहाज से इसने हमेशा खास चेतना का काम किया। आधुनिक समय में खेल मानवीय जीवन के और करीब आए हैं। बेशक ये स्वस्थ मनोरंजन से जुड़े हैं लेकिन जिस तरह दूरदराज के इलाकों में पिछड़ों और गरीबों को आगे बढ़ाने का काम कर रहे हैं, उससे नये उत्साह का माहौल बन रहा है। देश के बहुत से इलाके ऐसे हैं, जहां खेलों ने साफतौर पर समाज के गरीब वर्ग को ऊपर उठने का मौका दिया। उससे समाज का निचला वर्ग उभर पाया। यही नहीं इसके जरिए कुरीतियों और रूढ़ियों के खिलाफ एक असरदार लड़ाई लड़ी जा रही है। सही मायनों में ये महिला सशक्तीकरण का जरिया भी बन रहे हैं। भारत जैसे देश में खेलों के जरिए सामाजिक विकास, आर्थिक तरक्की और नई चेतना का रास्ता खुल रहा है। हजारों उदाहरण हैं जहां खेलों के जरिए मिजोरम से लेकर पंजाब और तमिलनाडु से लेकर कश्मीर तक लोगों को गरीबी से उठकर शोहरत और समृद्धि तक पहुंचने का मौका मिला, जीवन पूरी तरह बदल गया।

अमरीका में जो फ्रेजियर, मोहम्मद अली, इवांडर होलीफील्ड, माइक टाइसन समेत न जाने कितने ऐसे चैंपियन बॉक्सर हुए, जिनका बचपन गरीबी और अभावों के बीच गुजरा लेकिन खेल ने उन्हें नई पहचान और ऊंचाइयां दीं। लातिनी देशों में फुटबाल ऐसी ही भूमिका निभाता है। आमतौर पर गरीबी और गुरबत में खेल यहां बड़े सपने दिखाता है। जीवन संवारता है। पेले, मेरोडोना, रोनाल्डो, रोनाल्डिन्हो समेत न जाने कितने ही फुटबाल सुपरस्टार्स ने अपनी आंखें स्लम या गरीबी के बीच खोलीं। इसी तरह वेस्टइंडीज से लेकर अफ्रीका के देशों में भी खेल गरीबों का जीवन बदल रहा है। इसी तरह भारत में भी खेल तरक्की, विकास और समृद्धि का सेतु बन रहा है।

हरियाणा का छोटा सा-जिला है भिवानी। विकास के लिहाज से बेहद पिछड़ा हुआ। गरीबी खासी ज्यादा। भिवानी से सटे छोटे-छोटे गांवों में अब भी असमानता काफी ज्यादा है। यहां की बेचैनी यहां की गरीबी थी और ये चिंता कि किस तरह इससे लड़ा जाए। ऐसे में मुक्केबाजी का खेल यहां के गरीबों के लिए मजबूत हथियार बनकर उभरा, जो उन्हें सामाजिक और आर्थिक तौर पर न केवल ऊपर उठा रही है बल्कि मुकम्मल मंजिल तक भी पहुंचा रही है। बीजिंग में कांस्य पदक जीतने वाले विजेंद्र इसी शहर से ओलंपिक के क्वार्टर फाइनल तक पहुंचे। अखिल कुमार और जितेंद्र इसी छोटे शहर के हैं। यहां से सैकड़ों अंतरराष्ट्रीय मुक्केबाज निकल चुके हैं जबकि एक दर्जन से ज्यादा ओलंपियन।

आप ताज्जुब कर सकते हैं कि छोटे से इस शहर में छह मुक्केबाजी प्रशिक्षण केंद्र हैं। हर प्रशिक्षण केंद्र में करीब करीब ढाई सौ से तीन सौ बच्चे हैं। आमतौर पर ये या तो एकदम मुफ्त हैं या बेहद मामूली फीस वाले। चूंकि भारतीय खेल प्राधिकरण ने यहां अपना केंद्र खोल रखा है, इसलिए मुक्केबाजी में आने वाले बच्चों को खाने के लिए भरपेट भोजन से लेकर निशुल्क शिक्षा तक की गारंटी तो मिल ही जाती है। कपड़े भी मिलते हैं। साथ में नौकरी पाने का एक जरिया भी। शुरूआत में भिवानी से सटे गांवों के गरीब लोगों में मुक्केबाजी का क्रेज केवल इन्हीं कारणों से था लेकिन जब यहां मुक्केबाजी की पौध मजबूत होने लगी और बीजिंग ओलंपिक में यहां के चार मुक्केबाजों का जलवा देश ने देखा तो तस्वीर और बदल गई। पहली बार यहां के लोगों ने देखा कि मुक्केबाजी उनके बच्चों को महज खाना-कपड़े देने के साथ नौकरी ही नहीं दिलाती बल्कि पैसों की बारिश भी करा सकती है।

कहा जा सकता है कि भिवानी देश के दूसरे इलाकों के लिए रोलमॉडल है। यहां बच्चे आठ से नौ वर्ष या इससे भी पहले अपने हाथों में मुक्केबाजी ग्लब्स बांधकर रिंग में कूद पड़ते हैं। चोट लगती है, खून बहता है लेकिन वो बेखौफ डटे रहते हैं। सुविधाएं यहां बेशक विश्वस्तरीय नहीं, लेकिन छह सात साल में इन बच्चों के मुक्कों में वो आत्मविश्वास आ ही जाता है कि वो किसी से बेखौफ टकराने

का माद्दा रखते हैं। यहां मुक्केबाजी की नर्सरी करीब-करीब वैसे ही तैयार की जा रही है, जैसा चीन में दशकों से हो रहा है। बचपन में खिलाड़ियों को पकड़ना, फिर उन्हें एक बड़े मंच के लिए शारीरिक और मानसिक तौर पर तैयार करना।

भिवानी की आबादी करीब दो लाख है। आमतौर पर यहां गरीब किसान तबका रहता है। भिवानी के बच्चों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अब तक 150 पदक मिल चुके हैं। भिवानी में मुक्केबाजी के जरिए सैकड़ों खिलाड़ियों को सरकारी और प्राइवेट नौकरियां मिल चुकी हैं। उनके जीवन को बदलते सबने देखा। एक जमाने में विजेंद्र मामूली से कच्चे घर में रहते थे। अब भिवानी के करीब गांवों में उनका आलीशान घर खड़ा है। धन-दौलत की उन्हें कमी नहीं। ऐसा ही यहां बहुत से मुक्केबाजों के साथ हो चुका है। जिसके चलते मुक्केबाजी यहां जीवनशैली का एक ऐसा अनिवार्य अंग बन गया, जो उनकी किस्मत और स्थितियों को बदल रहा है। लड़कों की देखादेखी में अब लड़कियां भी यहां मुक्केबाजी सीख रही हैं। भिवानी की सफलता ने हरियाणा में नये तरह की खेल क्रांति की। भिवानी मुक्केबाजी केंद्र के कोच जगदीश सिंह, जिन्हें भिवानी को मिनी क्यूबा बनाने का श्रेय जाता है, कहते हैं कि यहां लोगों के पास करने को कुछ नहीं है, लिहाजा यहां परिवारों का मानना है कि मुक्केबाजी के जरिए उनके बच्चों के लिए नये रास्ते खुलेंगे।

फिक्की के एक अध्ययन के मुताबिक हरियाणा मुक्केबाजी और कुश्ती में देश के दूसरे राज्यों से बहुत आगे हैं। राज्य की अनुकूल खेल नीति ने खेल का जबरदस्त माहौल तैयार किया है। यहां खिलाड़ियों को नौकरी में तीन फीसदी आरक्षण लागू है, लिहाजा हजारों खिलाड़ियों को हर साल राष्ट्रीय स्तर से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शन के लिए नौकरी तो मिलती ही है, साथ ही इनामों की बौछार भी होती है। ओलंपिक में कुश्ती के कांस्य पदक विजेता योगश्वर दत्त इसी राज्य से ताल्लुक रखते हैं। इस राज्य ने पिछले दस सालों में ही अलग-अलग खेलों में सौ से ज्यादा ओलंपियन देश को दिये। कहा जा सकता है कि हरियाणा में खेलों ने गरीब और पिछड़े वर्ग को तरक्की करने का नया हथियार दिया। जिसका असर राज्य की साक्षरता, आत्मविश्वास और लड़कियों के प्रति अपराध में कमी में देखा जा रहा है। माना जा रहा है कि वर्ष 2020 के ओलंपिक खेलों में इस छोटे से राज्य के खिलाड़ी पांच गोल्ड मेडल जीतकर ला सकते हैं।

वहीं पड़ोसी राज्य पंजाब और हिमाचल ने पिछले कुछ सालों में शूटिंग में वर्ल्ड क्लास शूटर्स दिये। अगर अभिनव बिंद्रा ने वर्ष 2008 के ओलंपिक में गोल्ड मेडल जीतकर इस खेल के प्रति नया माहौल बनाया तो हिमाचल के विजय कुमार ने लंदन ओलंपिक में रजत पदक जीतकर इतिहास रचा। राज्य में एथलीटों का भी बोलबाला है। हालांकि बिन्द्रा कई बार व्यवस्था से नाराजगी जता चुके हैं और ओलंपिक जीतने के पहले खुद को पर्याप्त समर्थन नहीं मिलने की बात कह चुके हैं लेकिन यह सच है कि पंजाब में भी खिलाड़ियों को नौकरियों में आरक्षण दिया जाता है।

वैसे खेलों के जरिये सबसे तेज बदलाव पूर्वांचल प्रदेशों में दिखा। मुक्केबाजी, भारोत्तोलन, फुटबाल और तीरंदाजी में यहां शानदार पौध सामने आ रही है। मुक्केबाजी

नागपुर के बाहरी इलाकों में चलाये जा रहे फुटबाल प्रोग्राम में स्लम्स की लड़कियां जोर-शोर से शिरकत करती हैं- हाल ही में इसमें कई लड़कियां ब्राजील में हुए होमलेस वर्ल्ड कप में हिस्सा लेकर लौटीं। उनका मानना है कि आज खेल न केवल तमाम मुद्दों का समाधान करने में सहायक साबित हो रहा है बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य जागरूकता और मनोवैज्ञानिक तौर पर मदद भी कर रहा है।

चैंपियन एमसी मेरीकाम के अभिभावक किसी जमाने में खेतों में काम करते थे। उसी तरह वेटलिफ्टिंग स्टार सनामाचा चानू समेत न जाने कितनी ही खिलाड़ियों को बचपन में अभाव और गरीबी का सामना करना पड़ा। अब खेलों ने न केवल उन्हें मुकाम दिया बल्कि तकदीर बदली। वर्तमान में जहां मेरीकॉम पूरे देश के लिए रोल मॉडल बनकर उभरी, वहीं उनसे प्रेरणा लेकर पूर्वोत्तर राज्यों में बड़े पैमाने पर लड़कियां मुक्केबाजी में बढ़िया प्रदर्शन कर रही हैं। चानू की देखादेखी में मणिपुर, आसाम और अरुणाचल प्रदेश में वेटलिफ्टिंग का क्रेज बढ़ रहा है। इससे इलाके में एक खास चेतना पैदा हुई। सरकार भी महिलाओं और बच्चों के लिए खेलों की कई ऐसी योजनाएं चला रही है जिससे इस क्षेत्र की प्रतिभाओं को आगे आने का मौका मिल सके। यहां की लड़कियां कभी सोच भी नहीं सकती थीं कि उनका जीवन खेलों से इतना बदलेगा। जब उनके जीवन को बदलते-संवरते यहां के समाज ने देखा तो उन्होंने भी लड़कियों को आगे बढ़ाने का मौका देना शुरू किया।

खेलों से जो सबसे महत्वपूर्ण बात हाल के बरसों में देखी गई वो है महिला सशक्तीकरण। महाराष्ट्र, झारखंड और केरल जैसे राज्यों में अगर ये साफ देखा जा सकता है तो दूसरे राज्य भी तेजी से इसी ओर कदम बढ़ा रहे हैं। झारखंड के ग्रामीण इलाकों में आज से कुछ साल पहले तक माना जाता था कि लड़कियां घर का काम करने के लिए हैं, लिहाजा लड़कियों के पैरों में काफी बेड़ियां जकड़ी होती थीं। जब कुछ एनजीओ ने लड़कियों को भी खेल से जोड़ने की पहल शुरू की तो काफी विरोध हुआ लेकिन अब तस्वीर बदल रही है। झारखंड के छोटे गांवों की जूनियर लड़कियों ने हाल ही में स्पेन में एक फुटबाल टूर्नामेंट में हिस्सा लेकर कांस्य पदक जीता। इसके बाद पूरे देश ने इन लड़कियों के बारे में जाना। उनके इलाके में तो अब वो बदलाव की वाहक और हीरो हैं। खेलों के जरिए इन लड़कियों में फिर से शिक्षा के प्रति ललक भी पैदा हुई। अब ये सभी न केवल अपनी पढ़ाई को गंभीरता से हिस्सा ले रही हैं बल्कि उनमें एक खास आत्मविश्वास पैदा हुआ है। लड़कियों को लेकर यहां सैकड़ों-हजारों सालों से जारी कुरीतियां, बाधाएं और रूढ़ियां तेजी से टूट रही हैं। वो धन भी अर्जित कर रही हैं। झारखंड ऐसा राज्य है जहां बहुतायत में अनुसूचित जनजाति के लोग रहते हैं। खेलों ने उन्हें देश की मुख्यधारा से जोड़ा है। राज्य में खेल की हजारों बेहतरीन प्रतिभाएं निकलकर सामने आ रही हैं और अपने घरों की तकदीर बदल रही हैं। तीरंदाजी चैंपियन दीपिका के पिता मामूली टैक्सी ड्राइवर थे, लेकिन अब दीपिका पूरे झारखंड की शान हैं। तमाम

परिवारों को महसूस हो रहा है कि खेलों के जरिए वो आर्थिक और सामाजिक विकास कर सकते हैं। महाराष्ट्र और केरल ऐसे राज्य हैं, जहां खेलों के जरिए लंबे समय से बेहतर सकारात्मक माहौल बना है।

देश में तमाम जगहों पर सरकारी संस्थाएं और एनजीओ भी खेलों के जरिए विकास में भूमिका निभा रहे हैं। दूरदराज के क्षेत्रों और पंचायतों में भारतीय खेल प्राधिकरण व अन्य संस्थाओं ने पिछले दो तीन दशकों में जो खेल कार्यक्रम चलाये, उनसे भी काफी मदद मिली। देश के तमाम ऐसे इलाके हैं जहां एनजीओ गरीबों और झोपड़ पट्टियों में रहने वाले बच्चों को खेलों के जरिए आगे बढ़ने में बखूबी मदद कर रहे हैं। खेलों के साथ सबसे बड़ी बात ये है कि ये ऐसा प्लेटफॉर्म उपलब्ध कराते हैं, जहां से व्यक्तित्व निखार के साथ एक नई चेतना और आत्मविश्वास का विकास होता है।

झारखंड में युवा नाम का एनजीओ आदिवासी तबके की लड़कियों की जिंदगी को फुटबाल के जरिए संवार रहा है। 2009 में जब एक अमरीकन युवा ने रांची के ओरमाझी ब्लॉक में काम शुरू किया तो बहुत विरोध हुआ। बमुश्किल चार लड़कियां मैदान पर आ पाईं। अब यहां के मैदान पर रोजाना सुबह-शाम कम से कम 400 लड़कियां प्रैक्टिस करती हैं। ये सभी नियमित तौर पर पढ़ाई भी कर रही हैं। कई को सरकारी और प्राइवेट संस्थानों द्वारा नौकरी का ऑफर दिया जा चुका है। जहां सामाजिक ढांचे में बदलाव की बात है तो ये यहां क्रांतिकारी तौर पर देखा जा सकता है।

इसी तरह नागपुर के बाहरी इलाकों में चलाये जा रहे फुटबाल प्रोग्राम में स्लम्स की लड़कियां जोर-शोर से शिरकत करती हैं- हाल ही में इसमें कई लड़कियां ब्राजील में हुए होमलेस वर्ल्ड कप में हिस्सा लेकर लौटीं। उनका मानना है कि आज खेल न केवल तमाम मुद्दों का समाधान करने में सहायक साबित हो रहा है बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य जागरूकता और मनोवैज्ञानिक तौर पर मदद भी कर रहा है।

इसी तरह बंगलुरु में विशाल तलरेजा ने जब बैंक की अपनी नौकरी छोड़कर गरीब बच्चों के लिए स्पोर्ट्स का कार्यक्रम शुरू किया तो उन्हें नहीं मालूम था कि इससे इतना फायदा हो सकेगा। वो बच्चे जो पहले अपनी बेहद कमजोर आर्थिक पृष्ठभूमि के कारण गलत संगत में पड़ जाते थे उनमें सकारात्मक विकास दिखने लगा बल्कि उनकी सोच में खासा बदलाव आया। 11 वर्षों में ये संगठन तमाम बच्चों को लीडर के रूप में ढाल चुका है।

इसी तरह पश्चिम बंगाल में हावड़ा के पास बागदीपाड़ा नाम का स्लम एरिया पहले गरीबी और अपराधों के लिए जाना जाता था। पूर्व राष्ट्रीय चैंपियन तपन कुमार बसु ने एक दशक पहले इस इलाके में एक मुक्केबाजी रिंग की शुरूआत की, तब यहां कुछ बच्चों ने प्रैक्टिस शुरू की। अब यहां कई रिंग खुल चुके हैं और सैकड़ों बच्चे आते हैं। मुक्केबाजी रिंग युवाओं और बच्चों में अनुशासन, ऊर्जा, सकारात्मक सोच का जरिया बन गया। इस खेल ने यहां काफी हद तक बेरोजगारी और गरीबी से लड़ने में मदद की। राष्ट्रीय स्तर पर यहां से पिछले दस सालों में 150 बच्चों ने अलग-अलग प्रतियोगिताओं में बेहतर प्रदर्शन किया है। इस दौरान 70 से ज्यादा को अलग-अलग तरह की नौकरियां मिल चुकी हैं। यहां हर तीसरे घर में एक बॉक्सर है। अपराध का ग्राफ तेजी से नीचे आ चुका है, इलाके आत्मविश्वास की जो लहर अब दिखती है, वो पहले नहीं दिखती थी।

मुंबई में इसी तरह कुछ सालों पहले मैजिक बॉक्स नाम की संस्था ने फुटपाथ के बच्चों के लिए खेलों का एक प्रोग्राम शुरू किया। उसके असाधारण परिणाम देखने को मिले। बच्चों में बदलाव गजब का था। इस तरह के हजारों कार्यक्रम पूरे देश में अलग-अलग संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे हैं और आशातीत रिजल्ट मिलने लगे हैं। कहा जा सकता है कि ऐसे तमाम प्रोग्राम समाज की सोच, तरक्की और जीवन स्तर ऊपर उठाने में सहायक साबित हो रहे हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि हमारा देश अभी बुनियादी विकास की चुनौतियों से जूझ रहा है। जहां शिक्षा, स्वास्थ्य, लिंगभेद, असमानता और रोजगार बड़ी चुनौती हैं। अभी देश में 40 फीसदी से ज्यादा लोगों को स्वास्थ्य उपलब्ध नहीं हो पाता और 90 फीसदी बच्चे बगैर शिक्षा के स्कूल छोड़ देते हैं, ऐसे में खेल के कार्यक्रम इनसे निपटने में सहायक साबित हो रहे हैं और विकास में खास भूमिका निभा रहे हैं। बेशक ये अभी शुरूआती दौर में हैं लेकिन अगले एक दो दशकों में और असरदार परिणाम सामने की पूरी उम्मीद है।

यहां एक जिक्र और करना चाहिए। देश में शुरू हुई स्पोर्ट्स लीग्स मसलन क्रिकेट की इंडियन प्रीमियर लीग, इंडियन बैडमिंटन लीग और हॉकी इंडिया लीग ने भी खेल के जरिये विकास को छोटे-छोटे कस्बों से जोड़ दिया। आईपीएल में सैकड़ों ऐसे उदाहरण हैं, जहां क्लब और स्कूल-कॉलेज स्तर पर खेलने वाले छोटे शहरों के बेहतर खिलाड़ियों को न केवल इस लीग की फ्रेंचाइजी से जुड़ने का मौका मिला, बल्कि पैसा और पहचान भी हासिल हुआ। कई खिलाड़ियों की तो जिंदगी ही इस लीग ने बदल दी। कभी क्रिकेट को बड़े शहरों और बड़े लोगों का खेल कहा जाता था। भारतीय टीम में ज्यादातर बड़े शहरों और समृद्ध पृष्ठभूमि से आये खिलाड़ी होते हैं। लेकिन मौजूदा भारतीय क्रिकेट टीम अमूमन छोटे शहरों और कस्बों के खिलाड़ियों से बनी है, उनकी पृष्ठभूमि भी साधारण है। किसी के पिता चाय की दुकान चलाते थे तो कोई मामूली कामों से गुजारा करता था, खुद भारतीय कप्तान महेंद्र सिंह धोनी के पिता रांची में एक चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी थे। ये सभी खिलाड़ी अब देश के युवाओं में रोल मॉडल हैं। उन्होंने दिखाया है कि छोटे कस्बों और शहरों से भी उठकर ऊपर तक केसे पहुंचा जा सकता है। क्रिकेट तो अब हमारे देश में छोटे-छोटे गांवों और गलियों तक पहुंच चुका है और बड़े पैमाने पर तरक्की में योगदान दे रहा है लेकिन बैडमिंटन और हॉकी जैसे खेलों में भी मोटी धनराशि वाली लीग की शुरूआत भी तमाम खिलाड़ियों को आगे बढ़ने के मौके देने वाली है। माना जा रहा है कि आने वाले दस सालों में खेल हमारे देश में एक बड़ी इंडस्ट्री में तब्दील होने वाले हैं। तब वो देश और समाज के विकास में कहीं ज्यादा असरदार ढंग से भूमिका निभा पाएंगे। तब हम गांवों और कमजोर पृष्ठभूमि के बच्चों को कहीं ज्यादा तेज गति से बदलाव का वाहक पाएंगे। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। मुख्यतौर पर खेल पत्रकारिता से जुड़े रहे हैं।

ई-मेल : sanjayratan@gmail.com)

आयात के भरोसे इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग

● शिवानंद द्विवेदी सहर

''उपभोग में वृद्धि मांग में वृद्धि को बढ़ाता है जिससे निर्माण और रोज़गार सृजन दोनों में वृद्धि स्वाभाविक है। ऐसे में ज़रूरी है कि उपभोक्ता सामानों को ध्यान में रखकर संभावित बाज़ार के लिए निर्माण क्षेत्र को बढ़ावा दिया जाए, किंतु दुर्भाग्य में इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग के संदर्भ में अपार संभावनाओं के बावजूद ऐसी उत्सुकता दिखाई नहीं दे रही है।''

सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई क्रांति के बाद भारत इलेक्ट्रोनिक्स उपकरणों के सर्वाधिक उपभोक्ताओं वाला देश बन चुका है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले कुछ सालों में भारत में इलेक्ट्रोनिक्स का बाज़ार गुणात्मक स्तर पर तेज़ी से बढ़ा है और लगातार इसमें बढोतरी ही होती जा रही है। भारत में इस समय तकनीक और संसाधनों की क्रांति अपने चरम पर है और इलेक्ट्रोनिक उत्पादों की मांग लागातार बढ़ती जा रही हैं। भारत में इलेक्ट्रोनिक्स उपकरणों की बढ़ती मांग और लगातार तेज़ी से बढ़ते जा रहे इस बाज़ार का सही अंदाज़ा संसद में पेश की गई पिछले दो वर्षों की संबंधित रिपोर्ट से ही लगाया जा सकता है।

वर्ष 2010-11 में हुए इलेक्ट्रोनिक्स उपकरणों के कुल आयात का ब्यौरा प्रस्तुत करते हुए तत्कालीन केन्द्रीय राज्य मंत्री मिलिंद देवड़ा ने बताया था कि इस वित्तीय वर्ष में कुल एक लाख इक्कीस हज़ार करोड़ का इलेक्ट्रोनिक उपकरणों का आयात हुआ है। जबकि उसके ठीक एक साल बाद लोकसभा में पेश रिपोर्ट में यह आंकड़ा 30 फीसदी के उछाल के साथ लगभग एक लाख सत्तावन हज़ार करोड़ तक पहुंच गया। इन आंकड़ों को ठीक से समझने के बाद एक बात तो साफ तौर पर नज़र आती है कि अब इलेक्ट्रोनिक्स का बाज़ार इतना बड़ा तो हो ही चुका है कि भारतीय अर्थव्यवस्था को सीधे तौर पर प्रभावित कर सके। इस बात से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तेज़ी से विकसित हो रहा इलेक्ट्रोनिक्स बाज़ार भारत के लिए कई स्तरों पर विकास एवं बेहतरी की संभावना ले कर आया है लेकिन समानांतर रूप से इस बात पर भी व्यापक बहस ज़रूरी है कि बड़े स्तर पर फैल चुके इस बाज़ार को लेकर हमारी नीतियां कितनी मज़बूत और कारगर साबित हो रही हैं। इस पूरे मसले में अगर देखा जाए तो हमारी अर्थव्यवस्था पर इस बाज़ार का ज्यादा प्रभाव भारी मात्रा में होने वाले आयात की वजह से पड़ता नज़र आ रहा है

दरअसल लाखों करोड़ के इस आयात की सबसे बड़ी वज़ह ये है कि अभी तक भारत इन उत्पादों के निर्माण की दिशा में बुनियादी स्तर पर भी कोई काम कर पाने में सफल नहीं रहा है। जिस देश में इलेक्ट्रोनिक्स का बाज़ार इतना बड़ा हो वहां इलेक्ट्रोनिक्स उत्पादों के उत्पादन का बिलकुल ना होना आश्चर्यचकित करने वाली बात है। इस सच्चाई को कतई ख़ारिज नहीं किया जा सकता कि इलेक्ट्रोनिक उत्पादों के आयात के मामले में भारत जितना आगे जा चुका है उनके निर्माण मामले में उतना ही पीछे खिसकता गया है।

एक ताज़ा आंकड़े के अनुसार भारत में इलेक्ट्रोनिक्स निर्माण का कुल उद्योग पूरे विश्व का मात्र 0.7% है, जो कि भारतीय सेमीकंडक्टर के मांग के हिसाब से बहुत ही

सेमीकंडक्टर विनिर्माण संयंत्र को मंजूरी

केंद्र सरकार ने देश में सेमीकंडक्टर विनिर्माण संयंत्र बनाने की हरी झंडी दे दी है। केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री श्री मनीष तिवारी ने 12 सितंबर को मंत्रिमंडल की बैठक के बाद संवाददाताओं को यह जानकारी दी। उन्होंने कहा मंत्रिमंडल ने सेमीकंडक्टर केयर फ्रैब्रिकेशन विनिर्माण संयंत्रों की स्थापना के प्रस्ताव को सिद्धांत रूप में मंजूरी दे दी है।

संचार मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने इस मौके पर कहा 'सेमीकंडक्टर बनाने के दो प्रस्ताव आए थे। मंत्रिमंडल ने दोनों को ही सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया है। कैबिनेट ने इन कंपनियों को दी जाने वाली अन्य रियायतों को भी सैद्धांतिक मंजूरी दे दी है। ये रियायतें उन कंपनियों को भी दी जाएंगी, जो भारत में सेमीकंडक्टर संयंत्र लगाना चाहती हैं। मौजूदा नीतियों के तहत इन रियायतों को भी शामिल किया गया है, जो परियोजना की कुल लागत की 62 फीसदी होती हैं और बाकी 38 फीसदी ऋण प्रावधान के रूप में दिया जाता है, जिसे लौटाया जा सकता है। सरकार को सिर्फ ब्याज शुल्क का बोझ वहन करना होगा।'

दो इकाइयों के लिए अनुमानित निवेश करीब 25,000 करोड़ रुपये है और सरकार इन इकाइयों को कितनी रियायत देगी इसका फैसला चिप कंपनियों के साथ बातचीत के बाद किया जाएगा।

कम एवं निराशाजनक कहा जा सकता है। भारत आज भी इस मामले में इतना परिपक्व नहीं हो पाया है कि वो एक ट्रांजिस्टर लेवल के मामूली कंपोनेंट का निर्माण तक कर सके, शेष आईसी-चिप आदि का तो सवाल ही नहीं उठता। आज भी इलेक्ट्रोनिक कम्पोनेंट्स के मामले में हम चीन और कोरिया जैसे देशों पर निर्भर हैं। लिहाजा, इलेक्ट्रोनिक्स की दिशा में देश का लाखों करोड़ धन मात्र आयात के नाम पर विदेशों में जा रहा है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि बहुत कम समय में विकसित हुए इलेक्ट्रोनिक्स बाज़ार की वर्तमान स्थिति के आधार पर यह आकलन किया जा चुका है कि आगामी 2020 तक भारत का इलेक्ट्रोनिक्स आयात भारत के कुल तेल आयात से बड़ा हो चुका होगा। चूंकि इलेक्ट्रोनिक्स निर्माता ना होने की वजह से भारत की इलेक्ट्रोनिक्स निर्यात की स्थिति नगण्य है जबकि पड़ोसी मुल्क चीन दुनिया के कुल इलेक्ट्रोनिक्स निर्यात का 30 प्रतिशत निर्यात अकेले करता है।

हालांकि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इलेक्ट्रोनिक्स उदय के शुरुआती दिनों में भारत में इन कम्पोनेंट्स के निर्माण को लेकर सरकारी स्तर पर कोई पहल बिलकुल नहीं हुई है। इस दिशा में इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग को बढ़ावा देने एवं निर्माण तकनीक को विकसित करने के नज़रिये से ही सरकार द्वारा सबसे पहले सन 1983 में सेमीकंडक्टर प्रयोगशाला की स्थापना मोहाली में की गई थी। इस प्रयोगशाला की स्थापना का उद्देश्य यही था कि शुरुआती दिनों में अनुसंधान कार्य होगा एवं आगे चलकर इसे ही निर्माण केंद्र हब के रूप में विकसित कर लिया जाएगा लेकिन फिलहाल ऐसा हुआ नहीं है और ना ही भविष्य में भी ऐसा होता दिख रहा है क्योंकि, बाद में आगे चलकर भारत सरकार द्वारा ही 1 मार्च 2005 को इस प्रयोगशाला को सूचना प्रौद्योगिकी विभाग से हटाकर अंतरिक्ष अनुसंधान विभाग के अंतर्गत कर दिया गया एवं संस्था पंजीकरण अधिनियम के तहत इसका पंजीकरण करा दिया गया। पंजीकरण के बाद इस संस्था के उद्देश्यों में लिखित तौर यही बताया गया कि संस्था का मुख्य उद्देश्य माइक्रो-इलेक्ट्रोनिक्स के क्षेत्र में अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देना है लेकिन सेमीकंडक्टर निर्माण को लेकर कुछ ठोस नहीं कहा गया।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में श्रमिक उत्पादकता के अनुपात में रोज़गार के अवसरों में भारी स्तर पर गिरावट हुई है। सन 2004 से लेकर अब तक भारत में रोज़गारों के अवसरों में 0.1 प्रतिशत की मामूली बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है जबकि बेरोज़गारों की संख्या में भारी इज़ाफा हुआ है।

इलेक्ट्रोनिक्स निर्माण उद्योग को सरकार द्वारा गंभीरता से ना लिए जाने की वज़ह से वैज्ञानिक स्तर के तमाम लोग जो मोहाली लैब से शुरुआत में जुड़े, आगे चलकर इस मुहिम को छोड़ गए और निजी कंपनियों के साथ जुड़ गए। कहीं ना कहीं इस पूरे मामले में इलेक्ट्रोनिक्स के उद्योग को बढ़ावा देने में सरकारी उदासीनता भी एक बड़ी वज़ह रही है। फिलहाल भारत में कुल दो प्रयोगशालाएं चल रहीं हैं जो इलेक्ट्रोनिक अनुसंधान की दिशा में काम कर रहीं हैं, मगर मैन्युफैक्चरिंग के मामले में कहीं भी कोई पहल अभी ना के बराबर है। इसी क्रम में हाल ही में आई एक रिपोर्ट के मुताबिक इलेक्ट्रोनिक्स पुर्जों के मैन्युफैक्चरिंग को लेकर सरकार द्वारा हैदराबाद में एक सेमीकंडक्टर हब लगाने के लिए फैबसिटी के नाम से कोई योजना शुरू की गई थी, जिसका उद्देश्य तमाम इलेक्ट्रोनिक्स सेमीकंडक्टर निर्माता कंपनियों की मदद से इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग लगाना था लेकिन राजस्व एवं वित्तीय कारणों से इस पूरी योजना को रद्द करना पड़ा। परिणामत: एक बार और इस दिशा में निराशा ही हाथ लगी। अगर कारणों की तहों को पलट कर देखें तो इस पूरे उद्योग की स्थापना करने एवं उत्पादन शुरू करने में जो सबसे बड़ी रुकावट आ रही है वो है वित्तीय अभाव अथवा फंड की कमी।

दरअसल वर्तमान परिस्थितियों में भारत सरकार द्वारा इस दिशा में प्रस्तावित बजट का बहुत बड़ा हिस्सा आयात एवं रिसर्च आदि में ही ख़र्च होता है, जबकि इस उद्योग की स्थापना के लिए हज़ारों एकड़ की ज़मीन के अलावा लगभग चार हजार करोड़ अमरीकन डॉलर के निवेश की ज़रूरत है। फिलहाल ठंडे बस्ते में जा चुके हैदराबाद के फैब सिटी

सरकार का लक्ष्य 2020 तक 400 बिलियन अमरीकन डॉलर के निवेश एवं टर्नओवर के साथ इस पूरे उद्योग को भारत में स्थापित करने का है। अगर सरकार अपने लक्ष्य में 2020 तक भी कामयाब हो जाती है तो निश्चित तौर पर यह सेमीकंडक्टर इंडस्ट्री के अलावा इलेक्ट्रोनिक्स बाज़ार की दिशा में बड़ा और परिवर्तनकारी क़दम होगा।

प्रोजेक्ट के बाद अब सरकार ने भारत में सेमीकंडक्टर के मैन्युफैक्चरिंग उद्योग स्थापित करने का लक्ष्य 2020 तक का रखा है। केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा हाल ही में इलेक्ट्रोनिक सिस्टम डिजाइन एंड मैन्युफैक्चरिंग को वित्तीय मदद देकर इस उद्योग को स्थापित करने के प्रस्ताव को मंजूरी दी गई है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि अगर इस पूरे उद्योग को स्थापित करने में कामयाबी मिल जाती है तो भारत में कई तरह की संभावनाओं को बल मिलेगा। इलेक्ट्रोनिक्स मैन्युफैक्चरिंग का बड़ा और महत्वपूर्ण फायदा यह है कि इससे भारत में रोज़गार की असीम संभावनाओं के द्वार खुलेंगे। अगर रोज़गार के नज़रिये से देखें तो भारत में रोज़गार एक बड़ी समस्या की तरह है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक भारत में श्रमिक उत्पादकता के अनुपात में रोज़गार के अवसरों में भारी स्तर पर गिरावट हुई है। सन 2004 से लेकर अब तक भारत में रोज़गारों के अवसरों में 0.1 प्रतिशत की मामूली बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है जबकि बेरोज़गारों की संख्या में भारी इज़ाफा हुआ है। ऐसे में इलेक्ट्रोनिक्स मैन्युफैक्चरिंग उद्योग स्थापित होना एक परिवर्तनकारी कदम साबित हो सकता है। इलेक्ट्रोनिक्स में रोज़गार के लिहाज से देखें तो भारत में इलेक्ट्रोनिक्स मैन्युफैक्चरिंग लेवल पर रोज़गार का दायरा बहुत छोटा और सीमित है। अत: ज्यादातर इंजीनियर विदेशों की तरफ पलायन करने को मज़बूर हैं एवं जो बाहर नहीं जा पा रहे वो भारत में व्यापक अवसर नहीं मिलने के कारण बेरोज़गार की स्थिति में रहने को मज़बूर हैं। एक विदेशी कंपनी के साथ कई वर्षों से इलेक्ट्रोनिक्स इंडस्ट्री को क़रीब से देख रहे इलेक्ट्रोनिक्स शिवेश दुबे बताते हैं कि रोज़गार के लिहाज से इस पूरे प्रोजेक्ट के स्थापित

होने के बाद लगभग 2.8 करोड़ लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तौर पर रोज़गार का अवसर मिल सकता है एवं भारत पर चीन जैसे प्रतिस्पर्धी देशों से होने वाले इलेक्ट्रोनिक्स आयात का बोझ कम होगा एवं भारत इलेक्ट्रोनिक्स निर्यात की दिशा में एक क़दम आगे बढ़ सकता है। अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि भारत अगर इलेक्ट्रोनिक्स कम्पोनेंट्स का निर्माता बन पाने में सफल होता है तो भारत में रोज़गार को काफी बल मिलेगा।

हालाकि डॉलर के सामने मुंह की खाती भारत की वर्तमान अर्थव्यवस्था, इस निवेश को अमली जामा पहने की स्थिति में हैं ऐसा बिलकुल नहीं लगता है लेकिन कारण जो भी हों लेकिन इस बात से तो किसी को गुरेज नहीं होनी चाहिए कि इलेक्ट्रोनिक्स की दिशा मैन्युफैक्चरिंग इंडस्ट्री के ना होने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था को दोहरी मार का सामना करना पड़ रहा है। डॉलर के मुक़ाबले लगातार गिर रहे रुपये की कीमत का बड़े स्तर पर प्रभाव इलेक्ट्रोनिक्स के बाज़ार एवं आयात पर भी पड़ रहा है और इसका अप्रत्यक्ष वित्तीय नुक़सान सरकार को ही उठाना पड़ता है।

इस पूरे प्रोजेक्ट में सरकार का लक्ष्य 2020 तक 400 बिलियन अमरीकन डॉलर के निवेश एवं टर्नओवर के साथ इस पूरे उद्योग को भारत में स्थापित करने का है। अगर सरकार अपने लक्ष्य में 2020 तक भी कामयाब हो जाती है तो निश्चित तौर पर यह सेमीकंडक्टर इंडस्ट्री के अलावा इलेक्ट्रोनिक्स बाज़ार की दिशा में बड़ा और परिवर्तनकारी क़दम होगा। एक तरफ जहां हम इलेक्ट्रोनिक्स निर्माता होने के बाद आयात के इस जंजीर से मुक्त होकर दुनिया के तमाम विकसित एवं विकासशील देशों के साथ प्रतिस्पर्धा की कतार में खड़े होने की योग्यता हासिल कर पाने में सफल होंगे तो वहीं रिसर्च एंड डेवलपमेंट की दिशा में और अधिक आत्मनिर्भर बनेंगे। यह प्रोजेक्ट ना सिर्फ में भारत को इलेक्ट्रोनिक्स के क्षेत्र में विकसित करेगा बल्कि आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, अंतरिक्ष अनुसंधान, रोज़गार आदि की दिशा में व्यापक स्तर पर परिवर्तनकारी साबित होगा। आज लाखों करोड़ के आयात का बोझ झेल रहे देश को महज इलेक्ट्रोनिक्स का बड़ा बाज़ार होने की बजाये बड़ा उत्पादक भी बनना होगा।

अगर हम उत्पादक बनने की बजाय इसी तरह से आयात के भरोसे चलते रहे यह पूरा खेल देश की अर्थव्यवस्था पर प्रहार करता रहेगा और हमारी अर्थव्यस्था आदि में इसी तरह की विषम परिस्थितियां आती रहेंगी। प्राचीन काल में दुनिया को राह दिखाने वाले भारत को एक राह दुनिया से भी देखने की ज़रूरत है कि इलेक्ट्रोनिक्स को लेकर दुनिया की रफ्तार क्या है और हम इतने कच्छप चाल से क्यों चल रहे हैं? हम इलेक्ट्रोनिक्स का बाज़ार तो बहुत बड़ा खड़ा किए हुए हैं लेकिन उत्पादक छोटे स्तर का भी नहीं बन पाए हैं। हम जिस तरह से सॉफ्टवेयर उद्योग में तेज़ी से प्रगति कर रहे हैं उसी तरह से हार्डवेयर के क्षेत्र में भी आगे बढ़ना होगा, क्योंकि हार्डवेयर के मोर्चे पर बेहद लचर हैं। इलेक्ट्रोनिक्स की दिशा में बाज़ार और उत्पादन के बीच का यह असंतुलन बेहद घातक और नुक़सानदेय है। जितनी जल्दी संभव हो इससे निजात पाना एवं आत्मनिर्भर होना ज़रूरी है। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।
ई-मेल : saharkavi111@gmail.com)

क्रॉनिकल
आईएएस एकेडमी
सिविल सर्विसेज़ क्रॉनिकल की पहल
हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम
सिविल सेवा परीक्षा 2014
फाउन्डेशन बैच
मुख्य विशेषताएं
• एक वर्षीय कार्यक्रम
• सामान्य अध्ययन (प्रारंभिकी व मुख्य परीक्षा)
• पूर्णतः संशोधित अध्ययन सामग्री
• टेस्ट-श्रृंखला (प्रारंभिक परीक्षा)
• 100 प्रतिशत अद्यतन अध्ययन सामग्री
• उत्कृष्ट विशेषज्ञों के मार्गदर्शन में कक्षा
• असीमित वैयक्तिक शंका समाधान सत्र
• साप्ताहिक समसामयिकी पुस्तिका
• सीमित बैच आकार
प्रारम्भ 20 अक्टूबर
पंजीकरण जारी
सिविल सर्विसेज़
क्रॉनिकल
23 वर्षों से सफलता का मार्गदर्शक
नॉर्थ कैंपस (दिल्ली सेन्टर)
2520, हडसन लेन, विजय नगर चौक, दिल्ली-09
(जी.टी.बी मैट्रो स्टेशन के समीप)
www.chronicleias.com
अधिक जानकारी के लिए कॉल करें:
8800495544, 9953120676
YH-147/2013

रुपये का अवमूल्यन : कारण, परिणाम और आगे की राह

● हरकीरत सिंह

रुपये के संकेत चिह्न ₹ में ही रुपये के अवमूल्यन का कारण छिपा हुआ है। इस संकेत के निर्माता ने संकेत के ऊपरी भाग में दो समानांतर क्षैतिज रेखाओं की द्विबाधा का उपयोग किया है, ताकि रुपया अमेरिकी डॉलर सहित अन्य प्रमुख मुद्राओं से ऊपर न जा सके। संकेत का निचला हिस्सा नीचे गिरता हुआ-सा प्रतीत होता है। ऊपर की तरफ संकेत के मध्य में जरा-सा विचलन भी दिखता है, जैसे अवमूल्यन के बाद फिर से थोड़ा सुधार का संकेत। अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले रुपये की कीमत इस संकेत की तरह चली और हाल ही में इसने अपनी ऐतिहासिक गिरावट 68.80 को छुआ। निकट भविष्य में ऐसी और भी ऐतिहासिक गिरावट की आशंका है। तक़नीकी रूप से ₹ की कीमत वर्तमान में मुद्रा बाजार में मांग और आपूर्ति के कारकों के कारण अस्थिर बनी हुई है। पिछले कुछ सप्ताह में अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले रुपये की कीमत में 14 फीसदी की गिरावट दर्ज की गई है और दैनंदिन स्तर पर 1 से 3 तक की अस्थिरता अब सामान्य बात हो चली है। प्रमुख प्रभावी कारकों की वजह से संक्षिप्त रुप से रुपये की अस्थिर गति का इतिहास कुछ इस तरह का है।

- सन् 1947-भारत की बैलेंस शीट पर कोई विदेशी उधारी नहीं, अमरीकी डॉलर और भारतीय रुपये की कीमत = ₹।
- सन् 1951-सन् 1951 में पंचवर्षीय योजना की शुरुआत। सरकार ने कल्याणकारी और विकास योजनाओं को वित्तीय सहायता पहुंचाने के लिए बाहर से उधार लेना शुरू किया। अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले भारतीय रुपया = ₹4.8
- 1975-1985- सत्तर के दशक की शुरुआत में तेल की कीमतें बढ़ने से भारतीय रुपये का अवमूल्यन हुआ। घरेलू उत्पादन में कमी, लाइसेंस राज और बीओपी की स्थिति में गिरावट की वजह से अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले भारतीय रुपया ₹ 12.36 के स्तर पर पहुंचा।
- साल 1991-गंभीर बीओपी संकट। देश उच्च मुद्रास्फीति, कम वृद्धि की जद में साथ ही, विदेशी मुद्रा भंडार इस स्तर पर पहुंचा कि यहां तक तीन सप्ताह का आयात भी मुश्किल था। डॉलर के मुक़ाबले रुपया ₹ 17.90 पर पहुंचा।
- साल 1993- रुपये को बाज़ार की संवेदना के साथ स्वतंत्र रूप से बहने दिया गया। विनिमय दर को बाजार द्वारा निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र कर दिया गया और अत्यंत अस्थिरता की स्थिति में केंद्रीय बैंक के हस्क्षेप का प्रावधान निश्चित किया गया। इस वक्त अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले भारतीय रुपये की कीमत ₹ 31.37 पर पहुंच गई।
- वर्तमान स्थिति-विदेशी मुद्रा को बाजार से खींचे जाने की वज़ह से भारतीय रुपये का अवमूल्यन जारी रहा। आर्थिक नीतियां भ्रमित बनी रहीं, कमज़ोर आधारभूत ढांचा, रिकॉर्ड उच्चतम सीएडी, व्यापार घाटा और कमज़ोर वृद्धि के चलते रुपये की कीमत अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले 68.80 पर पहुंची।

रुपये के अवमूल्यन का कारण

यह समझना ज़रूरी है कि अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले रुपये का अवमूल्यन क्यों हो रहा है। रुपया अत्यंत अस्थिर और भारी दबाव में है और इसके पीछे कई भारतीय विशिष्ट कारकों के अलावा अचानक नये अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य का उभरना कारण है। कुछ विशिष्ट भारतीय कारकों में चालू खाते का घाटा बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद के 4.8 फीसदी तक पहुंच जाना, यूरोप और अमरीका में आर्थिक मंदी की वज़ह से धीमा निर्यात, तेल और गैर-उत्पादक सामान जैसे सोने का बढ़ता आयात, भारतीय इक्विटी और ऋण बाज़ार से अचानक और तेज़ी से विदेशी निवेशकों द्वारा विनिवेश, उदारीकरण प्रक्रिया की धीमी रफ्तार और कमज़ोर राजनीतिक इच्छाशक्ति की वज़ह से समन्वित रूप से भारत की एक नकारात्मक छवि बनी है। ये मुद्दे रुपये को अचानक और गहरे गर्त की ओर ले जा रहे हैं, ख़ासकर अमरीकी डॉलर, पाउंड स्टर्लिंग, यूरो और येन के मुक़ाबले। ढांचागत आर्थिक समस्याएं जैसे उच्च मुद्रास्फीति, विविध अनुदान योजनाओं का प्रतिगामी वित्तीय घाटा, पूंजी बाज़ार की कमज़ोरी, उच्च उपभोक्ता मूल्य सूचकांक, आर्थिक वृद्धि में गिरावट, पूंजीगत समानों के आयात के कारण सपाट औद्योगिक वृद्धि और स्थानीय बाज़ार में उच्च अस्थिरता आदि ने अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले रुपये के अवमूल्यन की गति और तेज़ की है।

बाज़ार इतना अस्थिर है कि कुछ ही सप्ताह में रुपया 60 से 68.80 पर पहुंच गया। बाज़ार के नकारात्मक ट्रेंड की वज़ह

से आर्थिक परिदृश्य में भी नकारात्मकता का संचार हुआ है और मुख्य क़ारोबारी मुद्रा डॉलर के मुक़ाबले रुपये का अवमूल्यन हो रहा है। रुपये की कीमतें गिरने की प्रमुख वज़ह बाज़ार की प्रतिकूल मानसिकता है।

अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले रुपये की कीमत में तेज़ गिरावट की प्रमुख अंतरराष्ट्रीय वज़ह अमरीकी फेडरल रिज़र्व के अध्यक्ष बेन बर्नांके का वह बयान भी रहा, जिसमें उन्होंने अमरीकी डॉलर के प्रवाह पर अंकुश लगाने और अमरीकी अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के लिए 85 बिलियन अमरीकी डॉलर प्रतिमाह की प्रतिबंधित आपूर्ति की बात कही। अमरीकी डॉलर को अमरीकी क्रेडिट रेटिंग में पुनरीक्षण दीर्घकालिक ब्याज दर में सुधार, सीरिया की समस्या की वज़ह से कच्चे तेल की कीमतों में इजाफे की अपेक्षा, यूरो-जोन में मंदी और यूरोपीय और जापानी केंद्रीय बैंकों की हालिया वित्त नीतियों की वज़ह से भी बल मिल रहा है। डॉलर का सूचकांक तीन सालों में अपने सर्वोच्च 84.30 के स्तर पर पहुंच जाने की वज़ह से भी अंतरराष्ट्रीय मुद्रा बाज़ार में रुपया समेत अन्य मुद्राओं की तुलना में डॉलर मज़बूत हुआ है। प्रमुख रूप से इन स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय कारकों की वज़ह से अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले रुपये की कीमतें अस्थिर रही हैं और इससे अर्थव्यवस्था और बाह्य क्षेत्रों में गंभीर समस्याएं पैदा हो गई हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

उपर्युक्त स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय कारकों की वज़ह से रुपये के लिए उच्च अस्थिरता की स्थिति पैदा हो गई है, जिसके कारण ऐतिहासिक रूप से रुपये की कीमत डॉलर के मुक़ाबले 68.80, पौंड के मुक़ाबले 104.30 और यूरो के मुक़ाबले 86 पर पहुंच गई है। इस बात की भी गहरी आशंका है कि यह सन् 2012 के स्तर पर भी न पहुंच पाए। रुपये की अस्थिरता का प्रभाव मुनाफा, राजस्व, ख़र्च, मूल्य, आयात, विदेशी मुद्रा ऋण के बढ़ते बोझ और अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक बाज़ार में हमारी कंपनियों की अप्रतिद्वंद्विता के रूप में सामने आता है। यह अस्थिरता जितनी ज़्यादा होगी, रुपये के बाहरी मूल्य में बार-बार, अनापेक्षित और दिशाहीनता की गति बनी रहेगी, जो भारतीय अर्थव्यवस्था को अस्थिर बनाए रखेगा। व्यापारिक अस्थिरता और आगे होने वाले संभावित नुक़सान के मद्देनज़र रुपये की इस अस्थिरता पर नियंत्रण करना निहायत ज़रूरी है।

रुपये की कमज़ोरी का प्रतिकूल असर अर्थव्यवस्था के सभी प्रमुख क्षेत्रों में पड़ने जा रहा है। तेल की कीमतों में वृद्धि से बढ़ने वाली मुद्रास्फीति रुपये की कीमतों में और गिरावट बढ़ाएगी, जिसका दुष्प्रभाव अर्थव्यवस्था के सभी संबंधित क्षेत्रों पर पड़ेगा। मुद्रास्फीति से ब्याज दर में गिरावट नहीं होगी, जो कि औद्योगिक वृद्धि के लिए निहायत ज़रूरी है। रुपये की कमज़ोरी से पूंजीगत सामानों का आयात और खर्चीला हो जाएगा, जिससे उद्योग में कंपनियों का निवेश टलेगा। इससे निर्माणगत प्रतिस्पर्द्धा और क्षमताओं पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। इससे प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियां विकसित होंगी और बेरोज़गारी और मंदी और बढ़ेगी। हमारी मुद्रा की दर में बदलाव से मुनाफा वाले लेन-देन घाटे के लेन-देन और ऐसी ही प्रतिकूलताओं में बदल जाएंगे।

विकसित मुद्रा विनिमय व्यवस्था में स्थानीय मुद्रा का उपयोग, रुपये में भुगतान, ऊंची क़ीमतों के आयात में दीर्घावधि क्रेडिट पर सहमति और निर्माण क्षेत्र में स्थानीय निवेश को प्रोत्साहन ऐसे कुछ मुद्दे हैं, जो स्थानीय मुद्रा बाज़ार में डॉलर की मांग पर निर्भरता कम करेंगे।

प्रभाव और निर्यातकों के लिए चुनौतियां

डॉलर के मुक़ाबले रुपये में अवमूल्यन हमारे आईटी क्षेत्र और ख़ासकर वैसे निर्यातक जो आयातित घटकों का उपयोग नहीं करते, अच्छी ख़बर है। वैसे निर्यातक जो उच्च मात्रा में आयातित कच्चा माल जैसे हीरे, ज़ेवर, अभियांत्रिकी के सामान आदि के आयात करते हैं, वे अमरीकी डॉलर की मज़बूती से बुरी तरह प्रभावित होंगे। रुपये का अवमूल्यन हमारे निर्यातकों को एक सही मंच देता है और वे अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में बिना मुनाफे से समझौता किए, थोड़ी कीमत घटाकर दूसरे आपूर्तिकर्ताओं को चुनौती दे सकते हैं। निर्यातकों को इस अवसर का सुदपयोग करते हुए विदेशी ख़रीददारों के व्यापार मॉडल को समझते हुए वर्तमान बाज़ार में गहरे पैठने की कोशिश करनी चाहिए। भविष्य की चुनौतियों को देखते हुए निर्यातकों को अपनी आपूर्ति श्रृंखला प्रभावी और ठोस बनाने की कोशिश करनी चाहिए। ऐसे क़दमों से प्रतिस्पर्द्धी क्षमता और लागत क्षमता बढ़ेगी, जिससे अंतरराष्ट्रीय व्यापार में दीर्घावधि नीतियां विकसित करने में मदद मिलेगी।

रुपये के अवमूल्यन ने निर्यातकों के समक्ष नयी चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। निर्यातकों के लिए मौजूदा और नये बाज़ार में अपनी ब्रांड इमेज विकसित करने का सर्वश्रेष्ठ समय है। निर्यात क्षेत्र को तक़नीक विकसित करने, लागत घटाने, गुणवत्ता विकसित करने, प्रतिस्पर्द्धी निर्माण क्षमताएं विकसित करने और क्षमताओं का विकास कर श्रम लागत कम करने पर ज़ोर देना चाहिए। हो सकता है कि निकट भविष्य में निर्यात के लिए ऐसे प्रोत्साहन न मिलें। नीतियां तैयार करने वाली एजेंसियों को निर्यात क्षेत्र के विकास के लिए ऐसे प्रभावी पैकेज तैयार करने चाहिए। हमारे निर्यातकों के लिए चीन से मुक़ाबला करने और कुछ अन्य विदेशी बाज़ार तलाशने का यह सर्वोत्कृष्ट समय है।

आयात पर प्रभाव और ऋण

रुपये का अवमूल्यन समग्र रूप से आयात व्यापार की लागत को बढ़ा रहा है। रुपये में गिरावट का रुझान आयातकों, कम ब्याज दर पर विदेशी मुद्रा उधार लेने वालों, विदेशों में जाकर पढ़ाई करने की योजना बना रहे छात्रों, विदेशों में जाने वाले पर्यटकों और विदेशों में चिकित्सा की योजना बना रहे लोगों के लिए अच्छा नहीं है। रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के सर्वे में यह बात सामने आई है कि अधिकांश कंपनियों ने डॉलर में लिए गए ऋण का पुनर्भुगतान नहीं किया है। इस प्रवृत्ति ने सस्ता विदेशी कर्ज को रुपये में लिए गए ऋण के मुक़ाबले महंगा बना दिया है, क्योंकि डॉलर की कीमत लगातार बढ़ रही है। ठीक इसी तरह भारतीय कंपनियों की विदेशी अधिग्रहण योजनाएं अब ज़्यादा ख़र्चीली हो गई हैं और इसके साथ-साथ उनकी पुरानी ख़रीदी गई संपत्तियां ऊंची कीमतों में तब्दील हो गई हैं। आयातकों के लिए रास्ता यह है कि वे ऊंची कीमतों का भार स्थानीय उपभोक्ताओं पर डालें, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति बढ़ेगी या फिर भारतीय ऑटो क्षेत्र को विकसित करें। इस क्षेत्र पर फिलहाल,

जापानी, कोरियाई, यूरोपीय और अमरीकी बहुराष्ट्रीय ऑटो कंपनियों का वर्चस्व है। रुपये के अवमूल्यन की चुनौती का मुक़ाबला करने के लिए ऑटो उद्योग ने दीर्घकालिक रणनीति बनाई है और भारतीय लघु इकाइयों से ऑटो पार्ट्स लेने की योजना है। रुपये का अवमूल्यन स्थानीय आंतरिक साधनों को प्रोत्साहन देकर व्यापार मॉडल में बदलाव लाएगा, जिससे मज़बूत मुद्रा क्षेत्र में निर्यात और कमज़ोर मुद्रा देशों से आयात का मॉडल उभरेगा।

आगे की राह

डॉलर और रुपये की दर का इतिहास स्पष्ट करता है कि एक बार रुपये की कीमतों में अगर गिरावट हुई, तो फिर यह वापस नहीं आती। अब निर्यातकों को अमरीकी डॉलर के मुक़ाबले रुपये को 60 पर निर्धारित कर और विनिमय दर को ध्यान में रखते हुए आगे की व्यापार रणनीति बनानी होगी। यह सही समय है जबकि हम अपना निर्यात बढ़ाएं और गैर-ज़रूरी आयात को नियंत्रित कर चालू खाता घाटे को कम रखते हुए रुपये पर बन रहे दबाव को कम करें। बड़े निर्यातक विदेशों में अपने भंडार गृह स्थापित कर सकते हैं या फिर अपने प्रमुख अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में निर्माण क्षमताओं का विस्तार कर सकते हैं। दीर्घावधि की निर्यात प्रोत्साहन योजना भी विकसित करने की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यापारिक लेन-देन में लागत कम करने की नीति ही अंतरराष्ट्रीय व्यापार का गुरु मंत्र होना चाहिए।

आंतरिक प्रवाह और अप्रवासी जमा को बढ़ाने की लक्षित पहल की आवश्यकता है। विदेशी आंतरिक प्रवाह को प्रोत्साहन देने जैसे डॉलर आधारित दीर्घावधि बांड जारी करना और भारत में निवेश को प्रोत्साहन देने पर गंभीरता से नीति बनाने की ज़रूरत है। अनपेक्षित बाज़ारी स्थितियों में विदेशी मुद्रा भंडार का संरक्षण और रुपये की कीमत को सुरक्षित रखना निहायत ज़रूरी है।

अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में हमें डॉलर पर निर्भरता कम करनी होगी। डॉलर-रुपये का बाज़ारी क़ारोबारी अंतरराष्ट्रीय मुद्रा बाज़ार के मुक़ाबले काफी कम है और यह आरबीआई से नियंत्रित है। मांग और आपूर्ति में बदलाव से अस्थिरता पैदा होती है, जिससे अर्थव्यवस्था के बाह्य क्षेत्र अस्थिर होते हैं। ऊंची कीमतों के कच्चे तेल और रक्षा आयातों में अतिरिक्त डॉलर भंडार के उपयोग की ज़रूरत है, ताकि स्थानीय ऑफ सोर मुद्रा बाज़ार में डॉलर की मांग कम हो। सरकार को द्विपक्षीय या बहुपक्षीय समझौतों के माध्यम से स्थानीय मुद्रा भुगतान को प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि तीसरी मुद्रा-डॉलर पर निर्भरता कम हो सके। इन क़दमों से रुपये पर दबाव कम होगा।

विकसित मुद्रा विनिमय व्यवस्था में स्थानीय मुद्रा का उपयोग, रुपये में भुगतान, ऊंची कीमतों के आयात में दीर्घावधि क्रेडिट पर सहमति और निर्माण क्षेत्र में स्थानीय निवेश को प्रोत्साहन ऐसे कुछ मुद्दे हैं, जो स्थानीय मुद्रा बाज़ार में डॉलर की मांग पर निर्भरता कम करेंगे। रुपये के प्रति सकारात्मक भाव विकसित करने के लिए नीतियों का क्रियान्वयन दृढ़ता से और विकासोन्मुखी तरीके से किए जाने की ज़रूरत है।

रुपये की कमज़ोरी का प्रतिकूल असर अर्थव्यवस्था के सभी प्रमुख क्षेत्रों में पड़ने जा रहा है। तेल की क़ीमतों में वृद्धि से बढ़ने वाली मुद्रास्फीति रुपये की क़ीमतों में और गिरावट बढ़ाएगी, जिसका दुष्प्रभाव अर्थव्यवस्था के सभी संबंधित क्षेत्रों पर पड़ेगा।

मुद्रा जोखिम का बचाव

रुपये की अस्थिरता ने अब मुद्रा जोखिम पर लगाम लगाने की ज़रूरत पैदा की है। भारतीय निगमों को अब वित्तीय विकल्प जैसे विनिमय व्यापार का भविष्य और विकल्प और विनिमय दर की प्रतिकूल गति रोकने जैसी नवोन्मेषी बचाव नीतियां विकसित करने की ज़रूरत है। निगमों को ऐसे मुद्रा विकल्प के उपयोग की ज़रूरत है, जो लचीले बचाव कारक पैदा कर सकें, विकल्प ऐसे जो डॉलर और रुपये की दर में अस्थिरता को बचाए रख सकें। निगमों के लिए सही समय है कि वे रुपये की कीमत को मद्देनज़र रखते हुए दीर्घावधि के लिए क्रियाशील बचाव नीतियां तैयार करें। विदेशी मुद्रा कर्ज की अदायगी में मुद्रा विनिमय का उपयोग किया जाए और वाणिज्यिक बैंकों की मदद से नीतियों को आगे ले जाया जाए। निगमों को अपनी बचाव नीतियां इस तरह तैयार करनी चाहिए जो जोखिम नीतियों पर प्रबंधन द्वारा स्वीकृत हो।

बहरहाल बचाव नीतियां इतनी प्रभावशाली होनी चाहिए जो रुपये के अन्य मुद्राओं के मुक़ाबले उन्नयन और अवमूल्यन के रुझानों के चक्र की चुनौतियों का मुक़ाबला कर सकें। डॉलर के मुक़ाबले रुपयो ऊपर जाए या नीचे, बचाव नीतियां ऐसी हों, जो विनिमय दर के परिदृश्य में लचीलेपन के साथ बचाव की स्थितियां तैयार कर सकें।

रुपये का अवमूल्यन अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते कई आंतरिक और बाह्य कारकों का परिणाम है। चालू वित्त घाटे की भरपाई के लिए निर्यात क्षेत्र को बढ़ावा देना और गैर-ज़रूरी मुद्रा में आयात को नियंत्रित करना आवश्यक है। प्रमुख विदेशी मुद्रा के रुपये के अंतर्मूल्यन रोकने में बाज़ार की संवेदना विकसित करने की ज़रूरत है। विदेशी व्यापार और उधारी लेन-देन में नयी मुद्रा जोखिम से बचाव के कारक मौजूद हों, जो प्रबंधन द्वारा स्वीकृत हों, ताकि मुनाफे का हिस्सा बच्चा रहे और अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में हम बने रह सकें। ❑

(लेखक आईआईएफटी में प्रोफेसर और सलाहकार हैं
ई-मेल : harkirat@iift.ac.in)

(पृष्ठ 46 का शेषांश)

होंगे कितनों को नुक़सान होगा और अन्य आर्थिक कारण क्या हो सकते हैं जो मजबूरी का कारण बन सकते हैं।

यह एक राजनीतिक और भावनात्मक मुद्दा है इसीलिए एक राजनीतिक वर्ग को सुशासन तंत्र और संस्थानों की संरचना पर ध्यान देना चाहिए। ये संस्थान संवेदनशील होते हैं, अत: इन्हें जन हितैषी और जन समावेशी बनाना ज़रूरी है। एक नये विधाई समाधान की बात भी सोची जा सकती है जिसके ज़रिये छोटे राज्यों की मांग पूरी की जा सकती है। इसके लिए जिलों और प्रशासनिक इकाइयों को स्वायत्तशासी बनाना होगा और उनके ऊपर क्षेत्रीय परिषदों का गठन करना होगा। ऐसा करके ही दूसरे पुनर्गठन आयोग को वित्त आयोग और अंतरराजयीय परिषद के साथ तालमेल करके काम करना होगा और ऐसा करके ही राज्यों की सीमाओं का निर्धारण फिर से किया जा सकेगा। ❑

(लेखक वित्त आयोगों से दो बार संबद्ध रह चुके हैं और इस समय दिल्ली के भीमराव अंबेडकर कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) के प्रधानाचार्य हैं।
ई-मेल : guljitkarora@gmail.com)

शिक्षा परिदृश्य में गुणवत्ता क्रांति की आवश्यकता

● आनंद कुमार

औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पाए समाज में शिक्षा को तीन परिवर्तनकारी दायित्व निभाने होते हैं- मस्तिष्क और ज्ञान प्रणाली को औपनिवेशिक दासता से मुक्त करना, मानव संसाधन विकास और समाज के कमज़ोर और पिछड़े वर्गों में शिक्षा के अभाव को दूर करके राष्ट्र निर्माण। भारत के संदर्भ में इसे सामाजिक न्याय के संवर्धन हेतु आधुनिकीकरण और व्यक्तियों और समुदायों में लोकतंत्रीकरण प्रक्रिया को गति देने हेतु नागरिकता निर्माण के दो और कार्य भी सौपे गए हैं। विदेशी शासन से स्वतंत्रता के 66 वर्ष के पश्चात हमारे देश के शिक्षा परिदृश्य की समग्र समीक्षा इस अर्थ में उपयोगी सिद्ध हो सकती है कि इससे हमारी प्रगति के साथ-साथ चुनौतियों के प्रमुख बिंदुओं को उचित रूप से समझा जा सकेगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे देशवासी अपने और अपने बच्चों के बेहतर कल के लिए शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूक और सचेत हो गए हैं। इससे देश के सभी क्षेत्रों और समाज के सभी वर्गों में सभी स्तरों पर शिक्षा की मांग में भारी वृद्धि हुई है। शिक्षा की मांग समाज में एक नयी व्यवस्था को बढ़ावा दे रही है जहां शिक्षा को न केवल बच्चों के बौद्धिक ताले को खोलने की सुनहरी कुंजी के रूप में देखा जाता है, बल्कि यह भी माना जाता है कि उससे बेहतर भविष्य के महान अवसरों के द्वार को भी खोला जा सकता है। यही विस्तार के लिए सामाजिक आधार का निर्माण करता है। परंतु इसमें समावेशन के लिए दबाव और उत्कृष्टता के लिए तड़प का होना भी आवश्यक है। शिक्षा को वर्तमान स्थिति से आगे निकल कर आना होगा। अधिकांश विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय संसाधनों के अभाव से जूझ रहे हैं, साथ ही उनपर नियमों के पालन का अनावश्यक ज़ोर दिया जाता है। और उनका प्रशासन भी अपेक्षित स्तर का नहीं होता। एक ऐसी व्यवस्था होनी आवश्यक है जो शैक्षणिक सृजनात्मकता, सामाजिक उत्तरदायित्व और शैक्षिक स्वायत्तता का संवर्धन करती हो। अन्यथा हमारे समक्ष शिक्षा का ऐसा एक विशाल बाज़ार बनने का ख़तरा उपस्थित हो सकता है जो जहां लाभ कमाने वाला शिक्षा उद्योग तो होगा परंतु शिक्षा प्रणाली के नाम पर कुछ भी नहीं।

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत को ब्रिटिश शासकों से विरासत में एक बेहद कमज़ोर और अराजक शिक्षा प्रणाली मिली। यह एक मिथ्या धारणा है कि उन्होंने अपने औपनिवेशिक मिशन के एक अंग के रूप में भारत में आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा दिया। उन्होंने उपनिवेश काल के पूर्व की हमारी ज्ञान प्रणाली के जनाधार और अध्ययन के आधार की अवहेलना की। ब्रिटिश राज ने एक ऐसी अभिजात्य औपनिवेशिक प्रणाली को बढ़ावा दिया जिसका आधार संकीर्ण था और जिसमें उच्च शिक्षा के अवसर सीमित थे, जिससे तमाम मेहनतकश लोगों के लिए शिक्षा के अवसर अत्यन्त क्षीण हो गए। इसका लाभ कम ही लोग उठा पाते और धन की बर्बादी भी काफी होती थी। स्वातंत्र्योत्तर परिदृश्य में हमने 1947 में अपनी शिक्षा यात्रा की शुरूआत 12 प्रतिशत साक्षरता और 20 से भी कम विश्वविद्यालयों के साथ की थी। भारत वर्ष 1951-52 तक अपने सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 0.6 प्रतिशत ही शिक्षा पर व्यय कर रहा था। केवल 0.7 प्रतिशत लोग ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। महिलाओं में साक्षरता की दर केवल 2 प्रतिशत थी और विभिन्न क्षेत्रों में यह दर 6 प्रतिशत थी।

भारत के संविधान निर्माताओं ने देश में शिक्षा सुविधाओं के अभाव पर गौर करते हुए लोकतांत्रिक व्यवस्था के पहले दशक के भीतर ही 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को सामान्य प्राथमिक शिक्षा का नि:शुल्क अवसर उपलब्ध कराने के प्रति संकल्प लिया। नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 हमारे बच्चों यानी भावी नागरिकों के प्रति व्यक्त संकल्प का पूरा करने का एक बहु प्रतीक्षित वचन है। इस कानून ने सरकार को निर्देश दिया है कि बच्चों के आवास के एक किलोमीटर के दायरे के भीतर ही उनके लिए प्राथमिक शाला की व्यवस्था की जाए। आज हमारी साक्षरता दर 74 प्रतिशत हैं पुरुषों में साक्षरता दर 82 प्रतिशत है जबकि महिलाओं में यह दर 65 प्रतिशत है। हमें यह जानकर राहत का अहसास होता है कि 6 से 14 वर्ष की आयु के 94 प्रतिशत से अधिक बच्चे पाठशालाओं में पढ़ने जाते हैं, 15-16 वर्ष की आयु के 83 प्रतिशत किशोर विद्यालय जाते हैं और लगभग 15 प्रतिशत कॉलेज और विश्वविद्यालय पढ़ने जाते हैं। भारत शिक्षित जनशक्ति के लिहाज से अमरीका, यूरोपीय संघ और चीन के बाद विश्व की चौथी सबसे बड़ी शक्ति बन चुका है। यह उपलब्धि स्वतंत्रता के बाद पिछले सात दशकों में देश में निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में 58,16,000 प्राथमिक विद्यालयों, 21,27,000 माध्यमिक विद्यालयों, 33,000 महाविद्यालयों और 550 विश्वविद्यालयों का विशाल नेटवर्क कायम करने से हासिल हुई है। सरकार ने शिक्षा के विस्तार के लिए शिक्षा उपकर लगाया हुआ है और 2000-01 में शिक्षा पर व्यय बढ़कर

4.26 प्रतिशत तक पहुंच चुका था।

परंतु उपनिवेश काल के दौरान तत्कालीन शासकों की उपेक्षा के कारण शिक्षा क्षेत्र के संचित अभाव को दूर करने के लिए हमें कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे। औपनिवेशिक शासन के अंत के बाद की प्रथम अर्द्धशती के दौरान सीमित संसाधन ही उपलब्ध थे। यह हर्ष की बात है कि सरकार ने वचन दिया है कि शिक्षा पर व्यय में क्रमिक वृद्धि की जाएगी और राष्ट्रीय न्यूनतम सामान्य कार्यक्रम में इसे सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत तक बढ़ाया जाएगा। भारतीय राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने भी सर्वसम्मति से इसके पक्ष में अपनी संस्तुति दी है। आयोग ने 2006 से लगातार इस बात पर बल दिया है कि देश में कम से कम 1,500 विश्वविद्यालय होने चाहिए जिसमें से 50 सर्वोच्च स्तर के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय हों, ताकि अन्य उभरते राष्ट्रों के समान और एक ज्ञानवान समाज के रूप में आगे बढ़ने के लिए कम से कम 15 प्रतिशत युवाओं को उच्च स्तरीय गुणात्मक शिक्षा का अवसर मिल सके। आयोग ने कहा है कि शिक्षा प्रणाली में प्रवेश की बाधाएं काफी ऊंची हैं, जबकि हमें शिक्षा को समाज की प्राथमिक आवश्यकता एवं व्यक्तियों के अमूल्य अधिकारों के तौर पर स्वीकार करना होगा। आयोग ने इस बात पर संतोष व्यक्त किया है कि इस विषय का आंशिक समाधान अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों के बच्चों को आरक्षण का लाभ देकर कर लिया गया है। इसने भारत के वाणी विहीन, चेहरा विहीन और अधिकतर मौन रहकर कष्ट सहने वाले लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषों को जिम्मेदार नागरिक बनाने में महती भूमिका निभायी हैं परंतु सार्थक उपायों से इसमें और भी सुधार लाने की आवश्यकता है ताकि आय, निर्धनता, महिलाओं के साथ भेदभाव, क्षेत्रीय पिछड़ापन और आवास स्थल के कारण होने वाली हानि के पीड़ितों के लिए शिक्षा के अवसरों में वृद्धि की जा सके। अन्यथा हमारी शिक्षा प्रणाली लिंग, ग्रामीण, शहरी वर्गीय और क्षेत्रीय असमानताओं के कारण अधूरी ही रहेंगी। हाल के वर्षों में हमारे नीति निर्माताओं ने इसके लिए दो प्रमुख उपायों पर जोर दिया है। एक तो है, अच्छे स्तर के विद्यालय और महाविद्यालयों की संख्या में तेज़ी से वृद्धि और दूसरे, छात्रवृत्तियों के रूप में उदार आर्थिक सहायता की सुलभता।

कोई भी शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय नीति के ढांचे और उसके लिए समग्र प्रावधानों के अंतर्गत समाज के दृष्टिकोण, पाठ्यक्रम, शिक्षकों की प्रतिबद्धता, अभिभावकों की सहभागिता और छात्रों के रवैये से आकार ग्रहण करती है। भारत इन संघटक तत्वों के अपेक्षित महत्व से पूर्ण परिचित है। अत: प्राथमिक स्तर से उच्च अध्ययन तक के त्वरित विस्तार और शिक्षा की सामग्री और विषयवस्तु में गुणकारी क्रांति के दोहरे लक्ष्य को हासिल करने के लिए इन सभी घटकों में एक साथ सुधार लाना होगा। अन्यथा हम सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तिहरे न्याय के माध्यम से राष्ट्र निर्माण की आंतरिक आवश्यकता और आधुनिक विश्व प्रणाली में अन्य प्रतियोगियों से प्राप्त होने वाली बाहरी चुनौतियों का सामना नहीं कर सकेंगे।

इस चुनौती का सामना करने के लिए हमें पांच निम्नलिखित कदम उठाने होंगे:

- प्राथमिक स्तर से आगे की जन शिक्षा की संस्थाओं के नेटवर्क के विस्तार के लिए सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत के बराबर आर्थिक संसाधनों का प्रावधान बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय आम सहमति की आवश्यकता है। इसमें कार्पोरेट (उद्योग) जगत को भी उनके सामाजिक दायित्व के एक अंग के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। राष्ट्र यह अपेक्षा करता है कि शिक्षा को व्यवसायीकरण से बचाने के लिए निजी संस्थाएं लाभ कमाने के लोभ का संवरण करेंगी।
- देश में प्रतिभावान और कुशल लोगों की संख्या में वृद्धि हेतु हमें जनसंख्या में युवाओं के बढ़ते प्रतिशत का लाभ उठाने के लिए 6 से 30 वर्ष तक के बच्चों/युवाओं को शिक्षा के अवसर सुलभ कराने के लिए राष्ट्र व्यापी समयबद्ध अभियान को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। अन्यथा हमें शिक्षा से वंचित होने के कारण युवाओं में अलगाव और गलत दिशा में भटकने के गंभीर खतरों का सामना करना पड़ सकता है।
- हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्वायत्तता के स्तर में सुधार हेतु राजनीतिक हस्तक्षेप, संविदाकरण और नौकरशाही की बढ़ती प्रवृत्ति पर लगाम लगाने के केंद्रीय और राज्य सरकारों के संयुक्त अभियान में अब और विलंब नहीं करना चाहिए। इससे शैक्षणिक भ्रष्टाचार के साथ-साथ स्वायत्तता एवं सम्मान की तलाश में स्वाभिमानी शिक्षकों के पलायन को प्रोत्साहन मिलता है। अदालतों ने भी कहा है कि वर्तमान स्थिति इतनी गंभीर है कि शिक्षकों, प्राचार्यों और कुलपतियों की नियुक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।
- विशेषज्ञों ने गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु बेहतर पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं और शिक्षक स्तर सुधार की बेहतर व्यवस्था के साथ-साथ समय-समय पर पाठ्यक्रम समीक्षा को संस्था का रूप देने और उच्चतर स्तर पर अध्ययन प्रक्रिया में अंतर्विधायी सुविधा को प्रोत्साहन देने के लिए बार-बार मांग उठायी है। अन्यथा समुचित शिक्षा के लिए बच्चों को कुछ चुनिंदा शहरों और देशों में भेजने का दबाव लगातार बढ़ता जाएगा। देश, प्रांत और परिवारों के स्तर पर इससे भारी आर्थिक हानि उठानी पड़ रही है। बहुप्रतीक्षित गुणवत्ता क्रांति के लिए प्रतिबद्धता दिखा कर शिक्षा के क्षेत्र में वैश्वीकरण की चुनौती का सकारात्मक उपयोग किया जा सकता है।
- हमारी शैक्षिक संरचना (पिरामिड) के सभी तीन स्तरों प्राथमिक, उच्चतर माध्यमिक और उच्च शिक्षा के छात्रों और शिक्षकों में सृजनात्मकता और अभिरुचि के संवर्धन के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आईसीटी) के बेहतर प्रयोग से अध्ययन के नए तरीकों के गहन उपयोग की तत्काल आवश्यकता है। इससे बढ़ती लागत और पढ़ाई बीच में छोड़ने की बढ़ती दर में कमी लाने के अलावा धन की बरबादी रोकने में भी मदद मिलेगी। शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहन दिए जाने के बाद से ही ये तीनों प्रमुख चुनौतियां बने हुए हैं। ❑

(लेखक नई दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में स्कूल ऑफ सोशल साइंसेज के सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोशल सिस्टम्स में समाजशास्त्र के प्राध्यापक हैं।

ई-मेल : anandkumar1@hotmail.com)

गांधी होने का अर्थ

● भारत यायावर

आज जब सांप्रदायिकता अनेक रूपों में अपना वीभत्स प्रदर्शन कर रही है, आतंकवाद पूरी दुनिया में निरर्थक हत्याएं कर रहा है, साम्राज्यवाद अपने नये लिबास 'बाज़ारवाद' के रूप में दुनिया में अपना मायाजाल फैला रहा है ऐसे में गांधी की याद सबसे अधिक आती है। गांधी जीवन भर सांप्रदायिक सौहार्द के लिए संघर्ष करते रहे- हिंदू-मुस्लिम एकता को मज़बूती प्रदान करते रहे। सबके दिलों में प्रेम हो, भाईचारे का संबंध हो, हिंसा मानवता के लिए कलंक है, उसे कभी धारण नहीं करना चाहिए- इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गांधी का पूरा जीवन समर्पित रहा। घृणा-विद्वेष से भरे हुए माहौल में प्रेम की ज्योति लेकर चलने वाला मानवता का यह योद्धा बुद्ध, ईसा और कबीर से शक्ति लेकर आगे बढ़ रहा था। कबीर का यह दोहा वे बार-बार दुहराते थे- *'कबीरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहीं। सीस उतारे भूईं धरै, सो पैठे घर मांहीं।'* उन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित करके इस प्रेम, अहिंसा और सत्य के घर में प्रवेश किया था। प्रेम से दीप्त आत्मा लिए उन्होंने सत्य के अनेक प्रयोग किए थे। उन्होंने भारतीय जनता में सिर्फ़ आत्मविश्वास ही नहीं भरा था, अपितु आत्म-दृढ़ता और आत्म-निर्भरता पैदा कर स्वाधीनता के पथ पर चलना सिखाया था। क्योंकि वे जानते थे कि किसी भी आंदोलन के लिए आत्म-दृढ़ता और आत्म-विश्वास बराबर की शक्ति रखते हैं। वे मानते थे कि जब प्रत्येक व्यक्ति में आत्म-विश्वास स्थिर हो जाएगा तो व्यक्ति उन्नति करेगा और उसके साथ समाज भी और आत्म-बल तथा आत्म-विश्वास तभी आ सकता है, जब हम सत्य के तद्रूप हो जाएं- व्यर्थ और असत्य विचारों का परित्याग कर आत्मा को ऊंचा करें। हृदय और आत्मा की विशालता सर्पोपरि है, शरीर एवं वैभव की विशालता क्षणिक है। गांधी ने विवेकानंद की तरह आत्मोन्नति के साथ ही सामाजिक या दीन-दुखियों की सेवा, ग्रामोन्नति एवं आत्म-शुद्धि पर ज़ोर दिया। गांधी ने 'अनासक्तयोग' नाम से गीता का भाष्य प्रस्तुत किया था। सही मायनों में गांधी अनासक्त योगी थे, स्थितप्रज्ञ थे।

गांधी जीवन को ही आंदोलन मानते थे- असत्य से आंदोलन, पराधीनता से आंदोलन। चाहे वह असत्य समाज में हो, व्यक्ति के मन में हो या सरकार में हो। सरकार, चाहे वह अपनी ही सरकार क्यों न हो, यदि असत्य के मार्ग पर है तो उसके विरुद्ध आंदोलन होना चाहिए। गांधी किसी आंदोलन का हिस्सा नहीं थे, वरन् उनका अपना जीवन ही अपनेआप में आंदोलन था। यही कारण है कि गांधी झूठ, पाखंड और अनाचारों से भरे माहौल में जहां-जहां गए, एक आंदोलन पैदा हो गया। गांधी से पहले दक्षिण अफ्रीका में कितने लोग गए थे, पर वहां रंगभेद और अत्याचार-अन्याय से भरे माहौल में गांधी के जाते ही एक आंदोलन पैदा हो गया और भारत में तो उनका पूरा जीवन ही आंदोलन में बीता। पिछली कई शताब्दियों में गांधी जैसा युगांतकारी व्यक्तित्व पैदा नहीं हुआ। उनकी निरंतर सक्रियता और गतिशीलता हर जगह उथल-पुथल पैदा कर देती थी। एक आंदोलन शुरू हो जाता था। गांधी जहां भी जाते हलचल मच जाती, पुलिस को लाठियां और गोली चलानी पड़ती। ऐसी अशांति मचती कि ब्रिटिश सरकार तक हिल जाती। इसलिए गांधी को जो सत्य और अहिंसा के पुजारी थे, कायर, डरपोक या भीरू नहीं कहा जा सकता। उनका व्यक्तित्व एक ऐसे योद्धा का था, जिसने बगैर हथियार उठाए, जनतांत्रिक तरीक़े से अपना संघर्ष चलाया था। इसलिए गांधी होने का अर्थ 'रघुपति राघव राजाराम' जैसा भजन गाना नहीं है, या अत्याचार और असत्य से सिर झुकाकर समझौता कर लेना नहीं। गांधी होने का अर्थ है- हर अन्याय और अत्याचार से लड़ना, सड़ी-गली व्यवस्था को समाप्त करने के लिए अशांति और गड़बड़ी पैदा करना और एक आंदोलन शुरू करना जो बेहतर के लिए हो, सुख और शांति के लिए हो।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के समय उन्होंने अपने अहिंसक विरोध के बारे में कुछ बातें कही थीं, जो *दिल्ली डायरी* के दूसरे खंड में संकलित है- 'आजकल की सरकार व्यवस्थित हिंसा का मानों एक दूसरा नाम है और हम उसे स्वीकार करते हैं, उसकी सत्ता के नीचे रहते हैं। मेरा मत है उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। कई साल पहले मैंने बिहार में इस बात का इशारा किया था। वहां पर पुरुषों ने पुलिस को स्त्रियों का अपमान करने दिया। उनका सामना करने की जगह वे भाग गए। मैंने उनको बुजदिल बनने को नहीं कहा था। उनका तो धर्म था कि स्त्रियों की रक्षा में हिंसक या अहिंसक तरीक़े से जान लड़ा देते। .... अगर बिल्ली चूहे पर हमला करे और कोई बहादुर चूहा सामने आकर अपने दांत से बिल्ली का सामना करे तो चूहे ने हिंसा की, ऐसा आप कहेंगे? उस समय मैंने यह दलील दी थी, मगर विचार का महत्त्व और अर्थ उस समय आज की तरह स्पष्ट नहीं हुआ था।'' गांधी के इस व्यक्तव्य का आज अर्थ क्या

है? इसका अर्थ है कि हम अन्याय, अत्याचार, गलत व्यवस्था को सिर झुकाकर स्वीकार न करें अपितु इनके विरुद्ध एक आंदोलन चलाएं और ऐसा करने वाला एक योद्धा ही कहा जाएगा।

गांधी एक ऐसे योद्धा थे, जिन्होंने अन्यायी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध तो लगातार आंदोलन चलाया ही, अपने समाज में व्याप्त जात-पात, अस्पृश्यता, ऊंच-नीच आदि को समाप्त करने की कोशिश की। उन्होंने महलों से ज्यादा कुटिया को महत्व दिया। शहर और संभ्रांत वर्ग की जगह गांव और किसान की उन्नत्ति पर ज़ोर दिया। उन्होंने बेशक़ीमती वेशभूषा की जगह लंगोटी को धारण किया। सन् 1931 में गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए जब गांधी लंदन गए थे, तब उनके ठहरने के लिए लंदन के एक बड़े होटल में व्यवस्था की गई थी, किंतु उन्होंने 'ईस्ट एण्ड' की मज़दूर बस्ती में रहना पसंद किया था। एक लंगोटी बांधे, हाथ में लाठी लिए वे लंदन गए थे- ठीक भारतीय किसान की वेशभूषा में। कोई तामझाम नहीं, कोई नौकर, अंगरक्षक नहीं। सिर्फ़ कुछ शिष्य और एक बकरी उनके साथ थी। अपने इसी ढंग पर उन्होंने 1930 ई. में दांडी यात्रा की थी एवं नमक कानून को तोड़ा था। इसी वेशभूषा में उन्होंने पूर्वी बंगाल के दंगाग्रस्त क्षेत्र, जिसे नोआखाली कहा जाता है, पैदल यात्रा की थी। अपने जीवन के अंतिम कुछ महीनों में वे दिल्ली की भंगियों की बस्ती में रह रहे थे।

इस तरह गांधी ऐसा करके एक आदर्श उपस्थित कर रहे थे, जिसका एक बड़ा उद्देश्य था। 1945 में गांधी ने जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र लिखा था ''हम देश को बदलने के लिए लड़ रहे हैं। तुम मुझे बताओ कि देश को बदलने के लिए तुम्हारे दिमाग में कौन-सा नक्शा है? मेरे दिमाग में देश बदलने का नक्शा है- गांव शक्ति का केंद्र बनेंगे, गरीब के बारे में सोचा जाएगा।'' नेहरू ने गांधी के पत्र का जवाब नहीं दिया तो उन्होंने राजकुमारी अमृत कौर से उस पत्र का अंग्रेज़ी अनुवाद करवा कर नेहरू को पुनः भेजा। तब नेहरू ने उत्तर दिया 'आप जो सोचते हैं, वह मुझे जंचता है।' इस पर गांधी ने पुनः लिखा- 'लेकिन तुम्हें मेरा रास्ता जंचता नहीं। मेरा तुम्हारा रास्ता अलग-अलग है।'

यह सही है कि गांधी और नेहरू के रास्ते अलग-अलग थे। उनकी मर्मस्पर्शी वाणी का नमूना देखिए- 'न जनता को मेरी ज़रूरत है और न उन लोगों को जिनके हाथ में सत्ता है। मैं तो यही चाहता हूं कि मैं काम करते-करते मरूं और जब मेरे प्राण निकलें तब भी मेरे होठों पर ईश्वर का नाम हो।'

मई, 1947 की एक सुबह, जब आज़ादी और देश-विभाजन की तैयारी हो रही थी, दिल्ली की सड़कों पर टहलते हुए एक शिष्य ने उनसे पूछा- 'फैसले की इस घड़ी में आपका कहीं जिक्र नहीं है। ऐसा लगता है, आपको और आपके आदर्शों को तिलांजलि दे दी गई है।' इस पर गांधी ने बड़े ही दुखी मन से जवाब दिया था- 'हां, मेरी तस्वीरों और मूर्तियों को हार पहनाने के लिए हर आदमी उत्सुक रहता है, लेकिन मेरी सलाह मानने को कोई तैयार नहीं।'

गांधी अकेले क्यों हो गए थे? उनकी पुकार सुनने वाला कोई नहीं रह गया था। इसका कारण क्या था? सभी नेता सत्ता और ऐश्वर्य के बंदरबांट में लगे थे, दूसरी तरफ विभाजन के साथ बीसवीं सदी के सबसे भयानक दंगों की अग्नि में पूरा देश जल रहा था। अकेले गांधी उस अग्नि को बुझाने के लिए दौरा कर रहे थे। आज़ादी के संघर्ष के रथ को जिस गांधी ने लंबे समय तक खींचते हुए विजय के द्वार तक लाकर खड़ा कर दिया था, वहीं गांधी अकेला हो गया था, उसका सपना धराशायी हो गया था। गांधी विभाजन नहीं चाहते थे। वे कहते थे- 'भारत का बंटवारा मेरी लाश पर होगा। अपने जीते-जी, मैं कभी भारत के बंटवारे के लिए तैयार नहीं हो सकता।' लेकिन गांधी को जीते-जी मारकर बंटवारा हुआ। गांधी हिंदू-मुस्लिम एकता चाहते थे और इसके लिए उन्होंने लगातार प्रयत्न किया था। पर उनके जीवन-काल में ही भीषण मार-काट मची। वे ग्रामोत्थान चाहते थे, किंतु उनके शिष्य सत्ताधारी होकर ऐश्वर्य की ज़िंदगी जीते हुए उस सीमांत के आदमी को भूल चुके थे। उनके बारे में गांधी ने मृत्यु के पूर्व कहा था- 'ये लोग मुझे महात्मा कहते हैं, लेकिन मैं आपसे बताता हूं कि ये लोग मेरे साथ भंगी जैसा सलूक भी नहीं करते।'

आज भी गांधी के बारे में कमोबेश यही स्थिति है। तो फिर गांधी के होने का जो अर्थ है, वह निरर्थक हो गया?

जहां सच्चाई है, ईमानदारी है, निष्ठा है, आस्था है, अन्याय का प्रतिरोध है, अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए उठा जन-आंदोलन है, वहीं गांधी है और वहीं गांधी होने की सार्थकता है। ❑

(लेखक विनोबा भावे विश्वविद्यालय हजारीबाग में अध्यापक हैं।
ई-मेल : bharatyayawar@yahoo.com)

(पृष्ठ 30 का शेषांश)

कदम रखते हैं जिससे भारत को समृद्ध बनाते हुए सम्मानजनक जीवनयापन के लिए समुचित आय प्राप्त कर सकें। यदि उनसे कहा जाए कि उनकी कार्यक्षमता के अनुकूल रोज़गार के अवसर नहीं हैं तब उन्हें भारी निराशा होना स्वाभाविक है। ये युवक-युवतियां न सिर्फ अपने परिवार और समाज बल्कि खुद अपनी नजरों में हीनभाव से ग्रस्त हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि उनकी सारी पढ़ाई-लिखाई, सारा शिक्षण-प्रशिक्षण निरर्थक चला गया है। वे अपने परिवार और रिश्तेदारों के ऊपर भार बनना कतई पसंद नहीं करते। यही कारण है कि अनेक युवा मनोरोग ग्रस्त हो जाते हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने वर्ष 2010 के अगस्त माह में जारी अपनी एक रिपोर्ट में युवा बेरोज़गारी के इन पहलुओं की चर्चा विस्तार से की है। हमें अपने देश के संदर्भ में इस पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

अंत में समावेशी आर्थिक संवृद्धि की दर को बढ़ाकर रोज़गार के भरपूर अवसर उत्पन्न करने की आवश्यकता है जिससे लोगों की आय बढ़े और वे शालीन जीवन के लिए अपेक्षित वस्तुओं और सेवाओं को प्राप्त कर सकें।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के अवकाश प्राप्त प्राध्यापक हैं।
ई-मेल : gmishra@girishmishra.com)

अनस्ट्रक्चर्ड सप्लीमेंटरी सर्विस डाटा (यूएसएसडी) क्या है?

अनस्ट्रक्चर्ड सप्लीमेंटरी सर्विस डाटा (यूएसएसडी) एक समझौता है जिसका इस्तेमाल सेवा प्रदाता के कंप्यूटरों के साथ संचार के लिए जीएसएम सेल्यूलर टेलीफोनों द्वारा किया जाता है। यूएसएसडी संचार प्रौद्योगिकी के लिए एक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली है, जिसका इस्तेमाल किसी मोबाइल फोन और नेटवर्क में अप्लीकेशन प्रोग्राम के बीच टेक्स्ट भेजने के लिए किया जाता है। दूर संचार में, गेट-वे एक केंद्रीय बिंदु है, जहां कई भिन्न प्रोटोकोलों और संचार सिग्नलों को नियंत्रित और रूटिड (आगे भेजा) किया जाता है। यह जीएसएम के लिए एक बेजोड़ प्रौद्योगिकी है। यह सेशन आधारित संचार है, जिसमें विभिन्न प्रकार के अनुप्रयोग होते हैं। वार्तालाप अनुप्रयोगों में यह एसएमएस से भी कम समय लेता है, क्योंकि यह एक सेशन आधारित फीचर है और कोई स्टोर या फारवर्ड सेवा नहीं है। किसी सेशन के दौरान 182 अल्फा न्यूमेरिक कैरेक्टरों के साथ यूएसएसडी संदेश यथार्थ समय (रीयल टाइम) संपर्क सृजित करते हैं। कनेक्शन डाटा की एकशृंखला के दो तरफा विनिमय को संभव बनाता है। इस प्रकार यह सेवा को अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण बनाता है। यूएसएसडी के ज़रिये वार्तालाप की प्रक्रिया इस्तेमालकर्ता द्वारा फोन के की-बोर्ड से मैसेज कंपोज करने के साथ प्रारंभ होती है। यह संदेश फोन कंपनी नेटवर्क पर जाता है, जहां इसे यूएसएसडी के प्रति समर्पित एक कंप्यूटर द्वारा प्राप्त किया जाता है।

कंप्यूटर से रिस्पॉन्स वापस फोन पर भेजा जाता है। ज़्यादातर जीएसएम फोनों में यूएसएसडी क्षमता होती है। कोई भी यूएसएसडी संदेश एक एस्टेरिक (*) से प्रारंभ होता है। संदेश हैश (#) के चिह्न के साथ समाप्त होता है। जहां तक यूएसएसडी के उपयोग का प्रश्न है, हमारी रोजमर्रा की ज़िंदगी में इसका सबसे ज़्यादा इस्तेमाल किसी समय विशेष पर यह जानने के लिए किया जाता है कि हमारे मोबाइल फोन अकाउंट में कितना बैलेंस है।

इस्तेमालकर्ता होम जोन को प्रोसेस सप्लीमेंटरी सर्विस रिक्वेस्ट (पीएसएसआर) भेजता है। गेट-वे के निर्देशन के अंतर्गत यह सही अप्लीकेशन को भेजा जाता है। अप्लीकेशन द्वारा यूएसएसडी गेट-वे के माध्यम से एक पावती भेजी जाती है। पीएसएसआर वापस रेस्पोंड (उत्तर देता है) करता है। बैलेंस स्क्रीन पर प्रकट होता है। प्रभारित कॉल के अंत में हमारे मोबाइल फोन की स्क्रीन पर बैलेंस की सूचना भी अनस्ट्रक्चर्ड सप्लीमेंटरी सर्विस के इस्तेमाल के ज़रिये प्रदर्शित होती है।

ऊपर वर्णित प्रक्रिया का इस्तेमाल ध्वनि वार्तालाप के लिए भी किया जाता है। यूएसएसडी उत्पाद-विज्ञापन का भी एक माध्यम है। इन दिनों अग्रेसिव टेली-मार्केटिंग उन ग्राहकों की परेशानी का सबब बनी हुई है जो अपने व्यस्त कार्यक्रम के बीच में अनावश्यक व्यवधान पसंद नहीं करते। यूएसएसडी सक्षम विज्ञापन टेली-मार्केटिंग की तुलना में कम आक्रामक होते हैं।

यूएससडी सेवाएं रोमिंग के दौरान वर्चुअल होम एन्वायरनमेंट (वीएचई) यानी वास्तविक घरेलू वातावरण प्रदान करती हैं। इसकी वजह यह है कि यूएसएसडी सेवाएं रोमिंग नेटवर्कों में उपलब्ध हैं और यूएसएसडी संदेश ग्राहक के होम नेटवर्क को निर्देशित होते हैं। इस तरह ग्राहक के भौगोलिक स्थान में परिवर्तन और अपने नेटवर्क क्षेत्र से परे जाने की स्थिति में सुचारू संचार में कोई बाधा नहीं आती। इस तरह ग्राहक रोमिंग के समय भी सेवाओं का एक समान समूह प्राप्त करता है। ❑

संकलन : हसन जिया, संपादक (उर्दू)

ब्रेंट क्रूड क्या है?

ब्रेंट क्रूड एक हल्का अशोधित (कच्चा) तेल है। इसका नाम ब्रेंट इसलिए पड़ा क्योंकि यह सबसे पहले ब्रेंट तेल-क्षेत्र में पाया गया। इसमें सल्फर की मात्रा 0.37 प्रतिशत होती है। यह पैट्रोल और मध्यम आसवों के उत्पादन के लिए उपयुक्त है। इसे उत्तरी सागर में खोजा गया था। इस प्रकार के कच्चे तेल का इस्तेमाल यूरोपीय, अफ्रीकी, मध्यपूर्वी देशों के तेल का न्यूनतम मूल्य तय करने के लिए किया जाता है। इसकी खोज 1960 के दशक के प्रारंभ में की गई थी। यह ब्रिटेन, नोर्वे, डेनमार्क, नीदरलैंड और जर्मनी द्वारा उत्पादित किया जाता है। यह 'लाइट' और 'स्वीट' ब्रैंड तेल है। यह ब्रेटन के दो उत्तरी सागर तेलों का मिश्रण है। वर्तमान में इसका उत्पादन 5,00,000 बैरल प्रति दिन किया जा रहा है। इस तेल और इसके समकक्ष अन्य तेलों के मूल्य में अंतर होता है। उत्तरी सागर तेल-क्षेत्रों के समापन और मांग एवं आपूर्ति की स्थिति में अंतर से भी मूल्यों पर असर पड़ा है। किंतु, मूल्यों में अंतर अब कम रह गया है।

सबको भाएं
ज्ञान बढ़ाएं
हमारी पुस्तकें

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

www.publicationsdivision.nic.in

e-mail: businesswng@gmail.com,dpd@sb.nic.in

Tel 011-24367260,24365609

प्रकाशक व मुद्रक : ईरा जोशी, अपर महानिदेशक (प्रमुख) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : रेमी कुमारी

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2012-14
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
23 सितंबर, 2013 को प्रकाशित • 29-30 सितंबर, 2013 को डाक द्वारा जारी

Licenced under U (DN)-55/2012-14
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

क्या आप

बैंक

पिछले वर्षों के हल प्रश्न-पत्रों सहित

प्रोबेशनरी ऑफीसर्स मैनेजमेंट ट्रेनीज

सम्मिलित लिखित परीक्षा

में सम्मिलित हो रहे हैं, तो पढ़िए...

उपकार की पुस्तकें

Code 1168
₹ 375/-

Code 1152
₹ 440/-

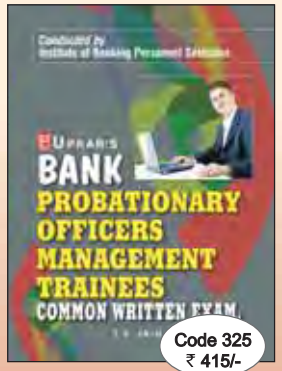

Code 325
₹ 415/-

Code 1721
₹ 340/-

योग्य एवं अनुभवी लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकें जो आपको महत्वपूर्ण परीक्षोपयोगी विषय-वस्तु उपलब्ध कराने के साथ-साथ परीक्षा में आपका उचित मार्गदर्शन भी करेंगी.

अन्य उपयोगी पुस्तकें

Code 671
₹ 310/-

Code 2184
₹ 65/-

Code 1401
₹ 65/-

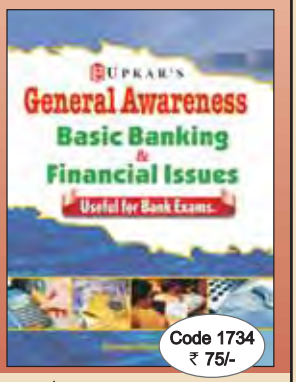

Code 1734
₹ 75/-

उपकार प्रकाशन
E-mail : care@upkar.in
Website : www.upkar.in

2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा – **282 002** फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
ब्रॉच आफिस : • 4845, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 फोन : 23251844/66
• 1-8-1/B, आर. आर. कॉम्प्लेक्स (सुन्दरैया पार्क के पास, मनसा एन्क्लेव गेट के बगल में), बाग लिंगमपल्ली, हैदराबाद-44 फोन : 66753330
• पीरमोहनी चौक, कदमकुआँ, पटना-800 003 फोन : 2673340
• 28, चौधरी लेन, श्याम बाजार (मेट्रो स्टेशन के निकट) कोलकाता-700 004. (W.B.) मो. : 7439359515

YH-145/2013